विवेक शिखा

वर्ष—९ | मई—१९९० | अंक—५

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

५१. श्री बी० भी० नागोरी — कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा – समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल — खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला — कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री वृजेश चन्द्र बाजपेयी – जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ— कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन - कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस— दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ — हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी— कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान— कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका — डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, रांची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम— मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा— दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम— इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा— इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द — रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे – दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप— रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय— छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा - छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु० प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे सिवनी मालवा (म० प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन— टुंडला (उ प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता— मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी - नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह — इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया - बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता - परोना, सारण (बिहार)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ९ मई — १९९० अंक — ५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जब तुम बाहर के लोगों के साथ मिलो तब सब से प्रेम करो, हिल-मिलकर एक हो जाओ – द्वेषभाव तनिक भी न रखो। 'वह साकारवादी है, निराकार नहीं मानता,' 'वह निराकरवादी है, साकार नहीं मानता', 'वह हिन्दू है, वह मुसलमान है, वह ईसाई है,' इस प्रकार किसी के प्रति नाक भौं सिकोड़ते हुए घृणा मत प्रकट करो। भगवान ने जिसको जैसा समझाया है, उसने उन्हें वैसा ही समझा है।

यह जानकर कि सभी जन भिन्न-भिन्न स्वभाव के हैं, सब के साथ जितना सम्भव हो सके मिला-जुला करना। इस प्रकार बाहर सब से प्रेम से मिलकर जब तुम अपने घर आओगे तब मन में शान्ति और आनन्द का अनुभव करोगे।

(२)

जो हविष्यान्न भोजन करता है पर ईश्वर की प्राप्ति नहीं करना चाहता, उसका हविष्यान्न गोमांस के तुल्य है। और जो गोमांस खाता है पर ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है, उसके लिए गोमांस भी हविष्यान्न के सामान होता है।

(३)

संसार में रहने से मन का बहुत सा भाग फालतू खर्च हो जाता है, इससे मन को जो क्षति पहुँचती है उसकी पूर्ति संन्यास ग्रहण करने पर ही हो सकती है।

(१) मात मोह-पट दे हटा

(भैरवी - तीनताल)

—सारदा तनय

अब मात मोह-पट दे हटा ।
हो प्रसन्न प्रगटा स्व-रूप की
परम दिव्य मंगल घटा ।।

भुवनमोहिनी माया में मत भुला,
विषयतृष्णा घटा ।
हिय को भर दे शुद्धभक्ति से,
मुख से माँ-माँ ही रटा ।

कृपा बिना तेरी कब किसका
माया का परदा फटा ?
माँ सारदे ! सदय हो सुत पर,
यह भवबंधन दे कटा ।।

(२) जननी दूर करो अज्ञान

(मिश्रपहाड़ी - कहरवा)

—सारदा तनय

जननी दूर करो अज्ञान ।
माया - मोह - नींद में सोऊँ,
देख भय - सपन व्याकुल होऊँ
शीघ्र जगा दे, भीति भगा दे,
करा अमियरस पान ।।

मोहपंक से मुझे उठा ले,
धुला कलुष अंक में बिठा ले ।
कैसा भी होऊँ पर मैं तो
तेरी ही संतान ।।

तू तो माँ करुणासागर है,
असंतुष्ट क्यों मुझ ही पर है ?
प्रसन्न हो अब दिखा मुझे कुछ
करुणा की पहचान ।।

भगवान् बुद्ध और भगवान् श्रीरामकृष्ण

मेरे आत्म स्वरूप मित्रो,

विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में बैशाख पूर्णिमा का एक अपना ही विशिष्ट महत्व है। इसी पूर्णिमा को, आज से ढाई हजार वर्षों से भी कुछ अधिक पहले, भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ था। मुक्ति की तीव्र कामना से गया में अश्वत्थ वृक्ष के नीचे—

इहासने शुष्यतु मे शरीरम् त्वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्पदुर्लभां नेहासनात्कायमतः चलिष्येत्॥

(अर्थात् इस आसन पर मेरा शरीर सूख जाय, त्वचा, अस्थि एवं मांस नष्ट हो जायं, लेकिन बहु-कल्प दुर्लभ बोधि को प्राप्त किये बिना इस आसन से मैं विचलित नहीं होऊँगा।) इस दृढ़ संकल्प के साथ आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए जब वे आसनस्थ हुए तो बैशाख की पूर्णिमा को ही उन्हें बोधिसत्व की प्राप्ति हुई और अस्सी वर्षों का दीर्घ जीवन जीने के उपरांत इसी बुद्ध पूर्णिमा को उन्होंने कुशीनगर में पूर्ण सहज भाव से अपने शरीर की चादर उतार दी। बुद्ध के अनेक जन्मों में से यह उनका अन्तिम जन्म था – एक अखण्ड चैतन्य सत्ता, अजन्मा का अन्तिम जन्म।

आज जब मैं बैशाख पूर्णिमा (६ मई) को भगवान् बुद्ध के जीवन और संदेश का चिन्तन करता हूँ तो मुझे सहसा भगवान् श्रीरामकृष्ण का भी स्मरण हो आता है। भगवान् बुद्ध और भगवान् श्रीरामकृष्ण! अध्यात्म-सागर के दोनों ही महाज्वार हैं। साधना-सिन्धु की दोनों ही उत्ताल तरंगें हैं। दोनों के पास 'अभीष्ट मस्तिष्क, अभिष्ट शक्ति और अभिष्ट हृदय – विस्तीर्ण आकाश जैसा असीम हृदय था।' दोनों अपने काल की विसंगतियों के बीच धर्म की सुसंगत व्याख्या करने अवतरित हुए थे और दोनों ने धर्म की रूढ़ियों को ढाहकर परम दुर्घर्ष सत्यों का उपदेश दिया था।

परम सत्य को उपलब्ध करने की उत्कट आकुलता जैसी श्री बुद्ध में थी वैसी ही श्रीरामकृष्ण में भी दिखाई पड़ती है। परम बोध की प्राप्ति के लिए भगवान् बुद्ध अपने शीरर के सूख जाने तथा त्वचा, अस्थि और मांस के नष्ट हो जाने की भी चिन्ता किये बिना ध्यान के आसन पर बैठ जाते हैं और तभी उठते हैं जब उन्हें परम बोधि— आकाश के समान अनन्त ज्ञान—की उपलब्धि हो जाती है। श्रीरामकृष्ण भी परम ब्रह्म या परम सत्य, जिसे वे माँ काली कहते थे, की प्राप्ति के लिए विकल हो धरती पर अपने होठों को रगड़-रगड़कर लहूलुहान कर लेते थे और एक दिन तो दक्षिणेश्वर के काली मंदिर का खड्ग उठाकर अपने जीवन की महाबलि देने को ही वे उद्यत हो गये थे। अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठने के पूर्व बुद्ध के संकल्प और काली मंदिर का खड्ग उठा अपनी ग्रीवा अर्पित कर देने की श्रीरामकृष्ण की आतुरता के मूल में एक ही उदग्र आकांक्षा है—सत्योपलब्धि की आकांक्षा।

ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त भगवान बुद्ध हिचकिचाते हैं—अपना संदेश देने से। किसे ज्ञान का संदेश दिया जाय! अच्छा है जंगल में एकाकी रहा जाय। किन्तु बुद्ध की करुणा! कोई सुने न सुने,

वे अपना अमृत-संदेश वितरित करेंगे ही। और उन्होंने सारनाथ में आकर अपना प्रथम बोधि सन्देश पाँच भिक्षुओं को दिया। और श्रीरामकृष्ण ! अनेकानेक धर्म मार्गों की साधना के द्वारा परम सत्य के विभिन्न कोणों और आयामों का प्रत्यक्षीकरण कर लेने एवं अविरत भाव समाधि में मग्न रहने के बावजूद युगधर्म के प्रचार के लिए योग्य माध्यम बनाने तथा संसार के ताप तप्त प्राणियों के दुःख दूर करने के लिए वे मृत्यु पर्यन्त अपने वचनामृत की वृष्टि अक्लान्त भाव से करते ही रहे।

भगवान् बुद्ध ने अमीरों का न्योता अस्वीकार कर करुणा से अभिभूत हो एक वारांगना का निमंत्रण स्वीकार किया और एक चाण्डाल के घर का मांसाहार तक करने में कोई हिचकिचाहट उन्होंने नहीं दिखायी। श्रीरामकृष्ण ने भिखारियों का जूठन साफ किया, उनका प्रसाद ग्रहण किया, निम्न श्रेणी के लोगों का शौचालय अपने लम्बे बालों से साफ किया तथा नटी विनोदिनी और वारांगना लक्ष्मीबाई पर भी अपनी कृपा की वृष्टि कर उनका उद्धार किया। पतित से पतित स्त्री को भी उन्होंने जगन्माता की दृष्टि से देखा। दोनों ही करुणा के अमृत कलश थे।

भगवान बुद्ध ने मार पर विजय प्राप्त की और श्रीरामकृष्ण को कभी काम से युद्ध ही नहीं करना पड़ा। काम सहज ही उनके चरणों पर प्रणत था, पराजित था। काम-कांचन की आसक्ति की एक क्षीण रेखा भी श्रीरामकृष्ण के जीवन में नहीं दिखायी देती।

भगवान बुद्ध दुःखियों का दुःख देख नहीं सकते थे। इतनी करुणा थी उनमें कि एक निरीह पशु के बदले स्वयं को बलिवेदी पर प्रस्तुत करने में भी उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं थी। निष्काम कर्म के ज्वलन्त आदर्श थे भगवान् बुद्ध। और श्रीरामकृष्ण वैद्यनाथ धाम के दीन संथालों को देखकर मथुर बाबू से उन्हें पेट भर अन्न भोजन कराने, वस्त्र देने तथा माथे पर तेल लगवाने की व्यवस्था करने की जिद कर बैठते हैं। वे इन जीवित शिवों को छोड़कर—भूखा छोड़कर काशी के शिव का दर्शन करना भी पसन्द नहीं करते हैं। जिस प्रकार बुद्ध ने अपनी समस्त कामनाओं पर विजय पा ली थी उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण ने भी। श्रीरामकृष्ण में जो ईषत् कामना थी वह लोक मंगल के लिए देह रक्षार्थ थी।

भगवान बुद्ध ईश्वर सम्बन्धी प्रचलित धारणाओं तथा ऐसी प्रार्थनाओं का खंडन करते थे जो मनुष्य को दुर्बल बनाती हैं। स्वामी विवेकानन्द इस संदर्भ में कहते हैं। "लोगों को रोने न दो। उनके पास इस प्रार्थना इत्यादि का कुछ भी न रहने दो। ईश्वर दूकान खोले नहीं बैठा है। हर साँस के साथ तुम ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हो। मैं बोल रहा हूँ, यह भी एक प्रार्थना है। तुम सुन रहे हो; एक प्रार्थना यह भी है। क्या तुम्हारा कोई मानसिक या शारीरिक व्यापार कभी ऐसा भी होता है, जिसमें तुम असीम दैवी शक्ति में भाग न लेते हो ? यह सब एक अविच्छिन्न प्रार्थना है। यदि तुम शब्दों के एक विन्यास मात्र को ही प्रार्थना कहते हो तो तुम प्रार्थना को छिछला बना डालते हो। ऐसी प्रार्थनाओं से अधिक लाभ नहीं होता, कोई वास्तविक फल उनसे शायद ही निकलता हो।

ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति तो कठोर श्रम करे और दूसरा कुछ शब्दों का जप करके फलों को प्राप्त कर ले। यह विश्व एक अविच्छिन्न प्रार्थना है। यदि तुम प्रार्थना को इस अर्थ में ग्रहण करते हो तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। शब्द आवश्यक नहीं हैं। मूक प्रार्थना श्रेष्ठतर है।" (वि० सा० ७।२०१)

श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में भी ईश्वर केवल मन्दिर में नहीं हैं। जो शिव मन्दिर में हैं वही मन्दिर के बाहर भी प्रत्येक जीव की शिव बुद्धि से सेवा करने से भी परमात्मा की प्राप्ति होती है।

एक और विलक्षण समता दोनों में यह है कि दोनों ही लौकिक जीवन, जन-सामान्य के जीवन में घटित घटनाओं के माध्यम से ऐसी उच्च आध्यात्मिक शिक्षाएँ देते हैं कि वे उपदेश हमारे मन-प्राणों को झंकृत किये बिना नहीं रहते। इस दृष्टि से दोनों में एक अनूठा कवि संचारित होता दिखाई देता है। शायद महान साधकों के अन्तर में कहीं न कहीं एक कवि बैठा होता है।

अवतार पुरुषों में भगवान् बुद्ध और श्रीरामकृष्ण दोनों की जिन छवियों की पूजा होती है वे छवियाँ उनकी उच्च भावसमाधि की अवस्था की ही है। दोनों की भाव मुद्राएँ एक हैं। दोनों के मुख पर समान करुणा की आभा तैरती दीख पड़ती है। और दोनों ही ईश्वर के प्रतिरूप में ही दृष्टिगोचर होते हैं ये चित्र उन महामानवों के हैं जो ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित होने पर प्रतिभासित होते हैं। हाँ, बुद्ध की छवियाँ काल्पनिक हैं, पर श्रीरामकृष्ण की प्रमाणिक।

यद्यपि कई दृष्टियों में भगवान् बुद्ध एवम् श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेश में काफी अन्तर हैं पर दोनों की आध्यात्मिक उच्चता कैलास शिखर को समान रूप से छूती रहती है।

धार्मिक परमपुरुषों में भगवान् श्री रामकृष्ण कदाचित् ईश्वर कोटि के प्रथम महापुरुष हैं जिन्होंने भगवान बुद्ध के नास्तिक कहे जाने का विरोध किया। ९ अप्रैल, १८८६ को वचनामृत के प्रसिद्ध लिपिकार श्री 'म' से नरेन्द्रनाथ ने बुद्धदेव के मत के विषय में कहा कि "'सब लोग उन्हें नास्तिक कहते हैं।" तब श्रीरामकृष्ण ने इशारा करके कहा—"नास्तिक क्यों, नास्तिक नहीं ! मुख से अपनी अवस्था का हाल वे नहीं कह सके। बुद्ध क्या हैं, जानते हो ? बोध स्वरूप की चिन्ता करके वही हो जाना—बोध स्वरूप बन जाना।... नास्तिक वे क्यों होने लगे ? जहाँ स्वरूप का बोध होता है, वहाँ अस्ति और नास्ति की बीच वाली अवस्था है।" ये 'अस्ति' और नास्ति' प्रकृत के गुण हैं। जहाँ यथार्थ बोध है, वह 'अस्ति' और 'नास्ति' से परे की अवस्था है।" (वचनामृत : ३।४६८)

बुद्ध के जीवन काल में ही लोग बड़ी संख्या में बुद्ध, उनके धर्म और उनके संघ की ओर खिंचकर आने लगे थे। श्रीरामकृष्ण स्वयं ही मानो बुद्ध हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में ही गेरुआ प्रदान कर अपने संन्यासी शिष्यों का मानो संघ स्थापित कर दिया जो माँ सारदा की स्नेह छाया में सबल हुआ। स्वामी विवेकानन्द के रूप में श्रीरामकृष्ण ने अपने धर्म सूत्रों का भाष्य भी प्रस्तुत कर दिया। एक कवि का कथन है—

रामकृष्ण प्रभु बुद्ध हैं, धर्म विवेकानन्द।
संघ सारदा माँ, शरण जात मैं सानन्द ॥

भगवान् बुद्ध, उनके संघ और धर्म के रूप में अवतरित भगवान् श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्दजी महाराज हममें करुणा, प्रेम, उपेक्षा ओर मुदिता के भाव भरकर उच्च आध्यात्मिक जीवन प्रदान करने की कृपा करें- यही मेरी उनसे आन्तरिक प्रार्थना है। जय भगवान् श्रीबुद्ध ! जय भगवान् श्रीरामकृष्ण !!

*

प्रशिक्षण

—भगवान बुद्ध

(आलस्य से) उठो, बैठो (ध्यान करो);
तुम्हें कैसे सुन्दर स्वप्न आ रहे थे ?
कैसी नींद थी, जो टूट गयी
कोई जैसे कँटीले तारों से बँध गया।

(आलस्य से) उठो, बैठो (ध्यान करो)
शीघ्र ही परिशान्ति के लिए यत्न करो।
कहीं तुम्हें यमराज गर्वयुक्त न देख लें।
पराधीन कर तुम्हें छल न लें।

जिन कारणों द्वारा देव और
आबद्ध मनुष्य हैं—
उनको पार करो
'क्षण' को बीतने न दो
'क्षण' के चले जाने पर जन दुखी होते
नरक के लिए वाध्य हो जाते हैं।

आलस्य धूल है
औंधे पड़े हो जहाँ वहाँ धूल है
आत्मा की कँटीली बाड़ से
प्रयत्न पूर्वक ज्ञान द्वारा बाहर आओ। (सुत्त निपात ३३१-३३४)

*　　*　　*

हरिस मेरी नम्रता, चित्त रस्सी है
मेरी स्मृतिपूर्णता ही हल का फाल औ' हाँकने के लिए पैना है।
कर्म और वचनों में संयन्त्रित, संतुलित भोजन करता हूँ,
मैं सत्य के द्वारा घास-फूस साफ करता हूँ।
आनन्द पूर्णता मेरी मुक्ति है,
चलने के लिए गीली भूमि से
बल ग्रहण करती, मेरी जोड़ी जुती हुई है;
यह आगे जाती, नहीं पीछे हटती है,
यह वहाँ जाती जहाँ क्लेश नहीं है,
और इस प्रकार यह हल जोतता जाता,
अमृत का फल मिलता है,
जो इस प्रकार हल चलाता वह
वह प्रत्येक दुःख से मुक्त हो जाता है।

(सुत्त निपात ७७-८०)

श्री माँ सारदा देवी के अवतरण की उपादेयता

—डॉ० उषा वर्मा
रीडर, हिन्दी विभाग
जगदम कॉलेज, छपरा

श्री दुर्गासप्तशती के एकादश अध्याय में भगवती ने आश्वासन दिया है :—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदावतीर्याहं कारिष्याम्यरि संक्षयम् ॥
(५४-५५)

यानी जब-जब दानवी-बाधा उपस्थित होगी तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओं का संहार करूँगी।

इस "दानवी बाधा" की सीमा में वे समस्त भाषण, चिन्तन और आचरण समाहित हैं, जो सहज-सुगम मानवीय यात्रा के मार्ग को अवरुद्ध करते हैं और "शत्रुओं का संहार" से तात्पर्य उन्हीं प्रतिकूल उपकरणों का परिमार्जन और परिशोधन है। सारदा देवी के रूप में अवतरित होकर मां भगवती ने अपना वही वादा पूरा किया है। श्री रामकृष्ण परमहंस अपनी सहधर्मिणी सारदा देवी के लिए कहते थे—"वह है मेरी शक्ति। वह है सारदा—सरस्वती--ज्ञान देने आयी है।[1] "उपनिषदें कहती हैं कि अज्ञान ही सब प्रकार के दुखों का कारण है। सारदा देवी का ज्ञान देने के लिए अवतरित होना निश्चय ही वर्तमान मानव को दुःखों से उबारने के लिए अवतरित होना है ताकि शुद्ध-प्रबुद्ध आत्मा अपने शाश्वत आनन्द स्वरूप से परिचित हो सके, अपने भीतर के ब्रह्म को पहचान सके और दूसरों में उसी ब्रह्म को देख सके। निर्द्वन्द्व होकर स्वयं के लिए "अहं ब्रह्मास्मि" और दूसरों के लिए "तत् त्वमसि" कह सके।

जिस युग में सारदा देवी का अवतरण हुआ था, लगभग बारह सौ वर्षों की गुलामी ने हमें इस हद तक निरीह कर दिया था कि हम स्वयं में परमात्मा तो क्या आत्मा तक मानने को तैयार नहीं थे। पशुओं से भी बदतर जीवन जीते जीते और अपने लिए विविध छोटी बौनी बातें सुनते सुनते हममें अपनी तथाकथित क्षुद्रता का एहसास इतना गहराया था कि तब परमात्मा से किसी तरह अपना सीधा सम्बन्ध जोड़ना सम्भव नहीं था। विभिन्न सम्प्रदायों और संकीर्ण मत-वादों ने मानव मानव के बीच ऊँची ऊँची अपारदर्शी दीवारें खड़ी कर दी थीं, बड़ी-बड़ी दुष्पार खाइयाँ खोद दी थीं। उन दीवारों को गिराना, उन खाइयों को पाटना और समस्त मानवता को परमात्मा की श्रेष्ठता से जोड़ना जितना आवश्यक था उतना ही दुष्कर था। अतः यह काम तीन आयामों से शुरू करना पड़ा। श्री रामकृष्ण ने कुछ श्रेष्ठ चुनिन्दे और भक्त हृदय लोगों के समक्ष वेदान्त के गूढ़ आदर्शों को स्थापित किया। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षित तार्किक लोगों को वेदान्त का वास्तविक समसामायिक अर्थ समझाया और शेष शिक्षित, अशिक्षित, श्रद्धालु, अश्रद्धालु, पावन, पतित नर नारियों का एक बहुत बड़ा वर्ग सारदा देवी की स्नेहिल छत्र-छाया में वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष से परिचित हुआ। इस प्रसंग में सारदा देवी की भूमिका उस शिव जैसी रही, जिन्होंने न केवल समुद्र मंथन से प्राप्त कालकूट का पान किया बल्कि सब की ओर से उपेक्षित, अनादृत, अशुभ, अपशकुनों को भी अपनी बारात में जगह दी। सारदा देवी की स्थिति देखकर स्वामी प्रेमानन्द जी ने स्वामी केशवानन्द आदि भक्तों से एक बार कहा था "मां सब अंगीकार कर रही है। .... स्वयं ठाकुर को भी ऐसा करते नहीं देखा। वे भी ढोल-बजाकर देख भालकर लोगों को लेते थे और यहां — माँ के यहां क्या देखते हैं? अद्भुत! अद्भुत!![2] स्वयं सारदा देवी भी कहती थीं कि ठाकुर चुनाव करते थे किन्तु

मुझे अपने अनेक बच्चों को देखना पड़ता है।[3]

तब देशकी अधिकांश जनता अशिक्षित थी। गरीब थी। स्त्रियों में तो प्रायः शिक्षा थी ही नहीं। कई तरह की निरर्थक अनुपयोगी रूढ़ियों, परम्पराओं आदि से वे इस तरह जकड़ी हुई थीं कि उनके लिए परमात्मा से अपने गहन सम्बन्ध की बात जन्मांध के सामने रोशनी की बात थी। उन्हें आईना दिखाना, मन की आंखों पर से पर्दा हटाना और "हममें तुममें खड्ग खम्भ में" एक ही प्रभु के निवास का विश्वास दिलाकर उन्हें नयी जीवन पद्धति और दृष्टि देना उसी के लिए सम्भव था, जिस पर वे पूरा पूरा विश्वास कर सकती हों और जो ईश्वर की ऊँचाई तथा मानव मन की गहराई में गमन करने में एक सा प्रवीण हो। इस महत् कार्य के लिए—मात्र सारदा देवी ही उपयुक्त थीं। श्री रामकृष्ण तक सब की पहुँच सम्भव नहीं थी। स्वामी विवेकानन्द शिक्षित विद्वान थे और फिर उन्हें विदेशों तक अपनी बात पहुँचानी थी, शिक्षित समुदाय को सटीक तर्क व्याख्याओं से प्रभावित अनुप्रेरित करना था। एक मात्र सारदा देवी ही उन्हीं के बीच की एक साधारण सी दिखने वाली उन्हीं की तरह एक पढ़ी लिखी स्त्री थी, इतना तक कि अपना हस्ताक्षर भी ठीक ठीक नहीं कर सकें। उन्हीं की तरह साधारण बोलचाल की भाषा में अपनी बात कहने वाली उनकी अन्तरंग सखी और मातृभाव से ओत प्रोत उनकी अपनी माँ। उनसे न स्त्रियों को संकोच था और न संतानवत् पुरुषों को। कहते हैं वेश से भिक्षा मिलती है। जन मन का विश्वास पाने और उन तक सहजता से अपनी बात पहुँचाने के लिए ही मानो सारदा देवी ने वह वेश धारण किया था। उनकी बातों में स्वयं के अनुभव की-सी प्रमाणिकता थी। परमआत्मीय की बातों का-सा असर था।

"महाभारत" में कहा गया है—

"नास्ति मातृ समो गुरुः।[4] यानी माता के समान कोई गुरु नहीं है। ठाकुर जानते थे कि मां हुए बिना गुरु नहीं हुआ जा सकता और यह भी कि बालक के समान सरल विश्वास के बिना न लोक की जानकारी हो सकती है और न प्रभु की।[5] तब जग को बालक सदृश बनाने के लिए और उन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए एक ऐसी विराट मां की आवश्यकता थी, जिसकी ममता की छुअन लोग साक्षात महसूस कर सकें—और जिसकी बातें उन्हें अपनी मां की बातों की तरह विश्वसनीय और अनुकरणीय प्रतीत हों। संतान के मन के जिस गहरे तल तक मां सहज ही पहुँच जाती है कोई दूसरा नहीं पहुँच सकता। मां अगर सच में मां है तो कोई दीवार, कोई खाई संतान के मन की दिशा में गमन करने से नहीं रोक सकती। मातृभाव की ऊँचाई और दृढ़ता से दीवारें ढह जाती हैं, खाइयाँ पट जाती हैं और संतान के मन पर इनकी पकड़ हो जाती है कि जो चाहे लिख दें, जो चाहे समझा दें, जहाँ चाहे भेज दे, जहाँ से चाहे खींच लें। मां से संतान को कोई संकोच भी नहीं होता न अपने छोटेपन का और न अपनी अज्ञानता का। यहाँ तक कि अपनी नग्नता का भी नहीं। वत्सल-भावना संतान को सारी कमियाँ ढक देती है। बिना स्वयं को अलग समझे, परम आत्मीयता—अभिन्नता के धरातल पर रह कर भी संतान की खामियों को चुन चुन कर उससे अलग कर देना और उसे किसी तरह की पीड़ा का पता तक नहीं चलने देना केवल मां, सम्पूर्ण मां के लिए ही सम्भव है। मां के कुशल गुण होने के यही कारण हैं इन्ही कारणों से मां सारदा जगत्-माता के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। उनकी मान्यता थी कि संसार में मातृभाव की प्रतिष्ठा के लिए वे अवतरित हुई हैं और उसी के लिए ठाकुर उनसे पहले देह त्याग गये हैं।[6]

"मातृभाव की प्रतिष्ठा" में मुख्यतः तीन दृष्टियाँ समाहित हैं। पहली जगत में मातृशक्ति—स्त्री—का सम्मान हो। दूसरी, जगत को मां की

आँखों से देखा, परखा और सँवारा जाय । तीसरी, जगत भी मां की तरह पूजनीय हो । मां सारदा इन तीनों दृष्टियों की दृष्टांता थी । ठाकुर आजीवन उनका सम्मान करते रहे थे । कभी गलती से "तू" कह दिया तो अशांत होकर क्षमा माँगी । कभी उन्हें लगा कि मां नाराज हो गयी हैं तो भतीजे को यह कह कर उन्हे शांत करने के लिए भेजा कि उनके नाराज होने से मेरा सब कुछ समाप्त हो जाएगा ।[7] अपने जीवन काल में ही उनमें गुरुभाव की प्रतिष्ठिा की । भक्तों के समक्ष मां को स्वयं से ऊपर का बतलाया ।[8] मां की षोडषी पूजा करके इस बात पर मुहर लगायी कि दुर्गा स्वरूपा स्त्री परम पूजनीया है । मां सारदा ने भी इस पूजा में सहयोग सहमति देकर स्त्री पूजा की आवश्यकता अहमियत स्वीकार की और स्त्री का अपमान करने वालों का विनाश अवश्यम्भावी बतलाया ।[9] मां सारदा ने न कभी, "अधम ते अधम अधम अति नारी"[10] कहा, न पति ठाकुर के देह त्याग पर मर्मांतक पीड़ा झेलने-महसूसने के बावजूद सती हुई और न यही कहा कि "जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तेंसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।"[11] यहाँ तक कि परम्परा प्राप्त सधवा के चिह्न हाथ में कंगन और लाल किनारी की साड़ी भी धारण करती रहीं । इसलिए नहीं कि इनसे उन्हें मोह था, वल्कि मात्र यह बतलाने कि वैराग्य का सीधा सम्बन्ध मन से है, न कि वाह्याडम्बर से और कि विधवा के लिए कुछ विधि-निषेध उसके संयम को ध्यान में रख कर बनाये गये हैं न कि उसे शारीरिक मानसिक यातना देने के लिए । माना कि कंगन नहीं उतारने की प्रेरणा ठाकुर ने ही दर्शन देकर दी, किन्तु मां यदि उसे गलत समझतीं या रूढ़ि परम्परा को सर्वोपरि मानतीं तो उसे कभी नहीं स्वीकारतीं । अपने शील, स्वभाव और आचरण से मां ने मातृशक्ति को कभी कमजोर नहीं होने दिया । ठाकुर के देहत्याग के ३४ वर्षों बाद तक ६६ वर्ष ६ माह की उम्र तक सतत कार्यरत जीवन जीकर, अनेक शिष्यों, भक्तों से अपार श्रद्धा, भक्ति का सम्मान पाकर तथा संसार को मानवोचित पथ दिखलाकर यह प्रमाणित किया कि स्त्री हेय नहीं है, कि स्त्री अकेली भी बहुत कुछ कर सकती है ।

मां सारदा देवी ने संसार को संतान की तरह चाहने - सँवारने का दृष्टांत रखा । स्नेह, सहिष्णुता, त्याग और परदोष अदर्शन को कभी स्वयं से अलग नहीं होने दिया । सहिष्णुता को सर्वाधिक महत्ता दी । औरों के साथ उनके सम्बन्ध की बात छोड़ भी दें तो अकेली राधू के साथ उनका सम्बन्ध पूरे संसार के साथ सम्बन्ध का संक्षिप्त प्रारूप था । राधू एक व्यक्ति नहीं, पूरा संसार थी । उसके साथ सदैव माँ की तरह बात कर माँ सारदा ने बतलाया कि इतना सह कर भी ऐसे रहा जा सकता है कि माँ बने विना संसार को झेलना और उसकी सुख शान्ति बनाए रखना असम्भव है ।

अनुपयोगी और निरर्थक मान्यताओं के मलवों से निकलने निकालने के लिए उन्होने सदैव मातृ-दृष्टि का प्रयोग किया । दोषों की ओर संकेत्त करती रहीं उन्हें जीवन से निकालने का उदाहरण प्रस्तुत करती रहीं । किन्तु इतनी दक्षता से कि लगा माँ हमारे ही मन का कह-कर रही हैं । स्त्री होने के बावजूद उन्होंने पितरां को पिण्ड-दान किया । पूजा में बाहयाडम्बर नहीं, मन की एकाग्रता को सर्वोपरि माना । विधि विधानों में अभिशाप माथापच्ची को अस्वीकारा ।

आचार में अति का खंडन किया । शुद्धता का सम्बन्ध देह से नहीं, मन से स्वीकारा । ऊँच नीच की धारणा को गलत बतलाया और वैसे सभी विवेकहीन-मानवतारहित आचरणों का विरोध किया जो मानव को उसके वास्तविक पथ से डिगाते थे । मानवता के हित को धर्म और अहित

को अधर्म कहकर धर्म की उन्होंने सरल सटीक व्याख्या की।

प्रेम के परम क्षणों में पात्र भेद मिट जाता है। राधा कृष्ण बन जाती हैं। कृष्ण राधा बन जाते हैं। चूंकि मां सारदा का समस्त प्रेम रस की दिशा में ऊर्ध्वगामी हो चुका था, अतः संसार कभी संतान की तरह, प्रिय तो कभी मां की तरह पूजनीय प्रतीत रहा। उसी भावना से वशीभूत होकर स्वामी विवेकानन्द ने भारत को संतान की तरह चाहा और माता के रूप में उसकी अर्चना भी की। भारत के प्रति उनकी यह दृष्टि प्रकारान्तर से सम्पूर्ण विश्व के प्रति थी, क्योंकि वे कृष्ण की इस उक्ति के शतप्रतिशत विश्वासी थे कि इस जगत रूपी मणियों के भीतर सूत्र रूप में मैं (प्रभु) विद्यमान हूँ —"मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।[12]

यह हार्दिक ईमानदार स्वीकार युग चेतना की माँग है कि तब के लिए मां सारदा आवश्यक थीं तो आज के लिए अनिवार्य हो गयी हैं। कारण, मातृशक्ति का इतना अपमान पहले कभी नहीं हुआ था। संसार को शत्रु भाव से देखने की ऐसी कलुषित दृष्टि भी पहले नहीं थी। न नैतिक मूल्यों की इतनी गिरावट थी और न विश्व को हिरोशिमा नागासाकी में तब्दील करने की आज जैसी बेचैनी और बृहत तैयारी ही थी। आज हम मानवता-विरोधी तत्वों के चक्रव्यूह में घिर गये हैं। इससे मां सारदा का जीवन और जीवन दर्शन ही उबार सकता है। त्रिकालदर्शिनी मां सारदा ने सम्भवतः इन्हीं बीहड़ दिनों के लिए अपने एक भक्त वैकुण्ठ के व्याज से हमें सुझाया था—"वैकुण्ठ, मुझे पुकारना।"

१—श्री सारदा देवी—स्वामी वेदान्तानन्द - अनु० डा० केदार नाथ लाभ, रामकृष्ण आश्रम, छपरा, पुरोवाक्।

२—श्री मां सारदा देवी —स्वामी गम्भीरानन्द, द्वितीय सं० पृ० ५६१

३—वही, पृ० ५६१

४—महाभारत— अनुशासनपर्व १०५/१५

५— अमृतवाणी, तृतीय सं०' पृ० १०३—३१

६—श्री मां सारदा देवी—स्वामी गम्भीरानन्द—द्वि० सं० पृ० १९१

७—वही, पृ० १०५

८—श्री रामकृष्ण और श्री मां —स्वामी अपूर्वानन्द—पृष्ठ सं० ५ ३

९ —श्री मां सारदा देवी - स्वामी गम्भीरानन्द—द्वि० सं० पृ० ३२३

१०—श्री राम चरित मानस—तुलसीदास, अरण्य कांड,शबरी वचन

११ —वही, अयोध्या कांड—श्री राम सीता संवाद।

१२ — गीता —७/७

राजस्थान में स्वामी विवेकानन्द

—स्वामी शशांकानन्द, प्राचार्य
समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़ मठ, हावड़ा

विश्ववन्द्य परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द समस्त ससीम बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके एकाकी विचरण करने की इच्छा से दिल्ली और उत्तर भारत होते हुए इस गौरवमयी वीरप्रसविनी भूमि 'राजस्थान' पहुँचे जिसका इतिहास राणा-प्रताप जैसे महान् वीरों के रक्त बलिदान तथा सतियों के पवित्र त्याग के आदर्श से भरा है। यही राजस्थान की धरती सौन्दर्य की लीला भूमि तथा भक्तों में श्रेष्ठ मीराबाई, चरण दास, सहजोबाई तथा दादू दयाल जैसे भक्तों की जननी रही है।

राजस्थान के इतिहास में फरवरी १८९१ ई० का दिन बड़ा-ही पवित्र रहा क्योंकि उस दिन ही स्वामी विवेकानन्द जी ने राजस्थान की भूमि पर अपने चरण रखे थे। अलवर के स्टेशन पर उतर कर स्वामीजी ने नगर में प्रवेश किया। पहले तो डाक्टर गुरुचरण लश्कर महाशय व उनके मित्र स्थानीय उच्च विद्यालय के मौलवी साहब ने आनन्द के साथ स्वामी जी के ठहरने आदि का प्रबन्ध कर दिया। तदुपरान्त घर छोटा पड़ जाने के कारण इन्जीनियर पं० शम्भुनाथ उन्हें बड़े आग्रह के साथ अपने घर ले गये। यहाँ वे दीर्घ समय तक रहे। कुछ ही समय में भक्तों की भीड़ जमने लगी। आध्यात्मिकता का स्रोत बह चला। कभी प्रार्थना होती तो कभी गान ध्यान। कभी भाव-भक्ति की गंगा प्रवाहित हो उठती तो कभी गहन चर्चा एवं तत्त्व विचार। पण्डित, अज्ञ, वृद्ध, बालक व धनी सभी को नव जीवन मिला। किसी-किसी को स्वामी जी का शिष्य होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। अलवर के राजा मंगलसिंह तथा उनके दीवान मेजर रामचन्द्र के साथ तो स्वामीजी की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बातें हुई थीं।

जिस रजबाड़े की मीरा बाई के अश्रुप्रवाह ने गिरिधर-गोपाल की मूर्ति में प्राणों का संचार कर दिया था और उसी स्पन्दनहीन मूर्ति में उसने जीवन्त पति के रूप में श्री कृष्ण को पाया था, उसी रजवाड़े के अलवर महाराज ने स्वामी विवेकानन्द से बड़ा ही विपरीत प्रश्न किया था, "देखिए बाबा जी महाराज, मूर्तिपूजा में मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है। इसके लिए मेरी क्या दुर्गति होगी? वास्तव में मैं लकड़ी, पत्थर, या धातु की बनी हुई मूर्तियों के प्रति अन्य साधारण व्यक्तियों की तरह श्रद्धा-भक्ति नहीं कर सकता; क्या इसके लिए मुझे परकाल में कठोर सजा भुगतनी पड़ेगी?"

"अपने विश्वास के अनुसार उपासना करने पर परकाल में सजा क्यों मिलेगी? मूर्ति पूजा में आपका विश्वास नहीं है तो क्या हुआ?" पहले तो स्वामीजी ने इस प्रकार का उत्तर देकर उपस्थित व्यक्तियों को विस्मित कर दिया क्योंकि इन व्यक्तियों ने कई बार स्वामीजी की मूर्ति के प्रति अतुलनीय निष्ठा देखी थी, स्वामीजी को कई बार श्री बिहारीजी के मन्दिर में श्रीमूर्ति के सामने भजन गाते-गाते नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करते हुए साष्टाङ्ग होकर गिरते देखा था। किन्तु तुरत पश्चात ही स्वामीजी ने दीवार पर लटके हुए महाराज के चित्र को उतरवाया और उस चित्र को भूमि पर रखकर दीवान बहादुर से उस पर थूकने

के लिए कहा। दीवान बहादुर को किंकर्तव्य-विमूढ़, भयकातर और विस्मित देखकर उन्होंने स्वरस अवरुद्ध चित्रवत् खड़े उपस्थित व्यक्तियों को उद्देश्य करके ऊंचे स्वरों में कहा, "आप में से कोई भी इस पर थूक दीजिए। यह एक कागज का टुकड़ा ही तो है। आप लोग हिचकिचा क्यों रहे हैं ?—आइए इस पर थूकिए न ?" निस्तब्ध जनता एक बार स्वामीजी और एक बार महाराज मंगल सिंहजी की ओर ताकने लगी। निस्तब्धता भङ्ग करते हुए दीवान बहादुर ने कहा, "आप क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? क्या हम महाराज के चित्र पर थूक सकते हैं ?"

"महाराज का चित्र ही तो है, महाराज तो स्वयं नहीं हैं—यह तो कागज का एक टुकड़ा मात्र है। यह महाराज की तरह हिलता-डुलता भी तो नहीं। और न ही महाराज की तरह बात-चीत ही कर सकता है। आप लोग थूक न सकेंगे क्यों कि आप यह जानते हैं कि ऐसा करने से महाराज बहादुर का असम्मान होगा।" ऐसा कहते हुए स्वामीजी ने पुनः महाराज को लक्ष्य करके कहा, देखिए महाराज, एक दृष्टि से विचार करने पर आपका यह चित्र नहीं है, पर दूसरी दृष्टि से इस चित्र में भी आप का अस्तित्व है और तभी कोई इस पर थूकने के लिए अग्रसर नहीं हुआ क्योंकि ये लोग आपके अनुरक्त व विश्वस्त सेवक हैं। हे राजन ! इसी प्रकार लकड़ी, पत्थर या धातु की बनी मूर्तियां भी श्री भगवान् की विशेष गुणवाचक मूर्तियाँ हैं। उन्हें देखते ही भक्त के मन में भगवद्भाव जाग्रत हो उठता है। मूर्ति का सम्मान या असम्मान भगवान् का सम्मान या असम्मान है। कोई भी पत्थर, धातु या लकड़ी की पूजा नहीं करता, उन्हीं एक अनन्त भावमय भगवान् की—जो सभी के उपास्य और सच्चिदानन्द स्वरूप हैं—भक्तगण अपने-अपने भाव के अनुसार उन्हीं की मूर्ति की पूजा करते हैं। तेजस्वी और स्वाधीन-चेता स्वामीजी के निर्भीक शब्दों से राजा मङ्गल सिंहजी का शंका-समाधान हुआ और वे कृतज्ञ दृष्टि से स्वामीजी की ओर देखते हुए उनके चरणों की धूलि लेते हुए आशीर्वाद की कामना करने लगे। भक्तश्रेष्ठ मीराबाई की भूमि पर एक बार पुनः मूर्ति पूजा की महत्ता प्रकाशित कर स्वामी जी ने जगत्वासियों के मन में मूर्तिपूजा की निष्ठा स्थापित की।

राजा मंगल सिंह के आग्रह पर ही दीवानजी ने स्वामीजी को अपने घर आतिथ्य स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की तथा स्वामीजी ने स्वीकार भी किया। वहाँ रहने के समय स्वामीजी ने संस्कृत अध्ययन एवं कृषि-कार्य पर बहुत जोर दिया था।

अलवर से पैदल चलकर भेली होते हुए पाण्डूपोल, टाहला, नारायणी तथा बसोया से रेलगाड़ी द्वारा स्वामीजी जयपुर पधारे। जयपुर में वे प्रायः दो सप्ताह रहे। वहाँ पर भी स्वामीजी शीघ्र ही असंख्य भक्तों के आकर्षण का केन्द्र बने तथा आध्यात्मिकता का स्रोत प्रवाहित कर जनता को कल्याण मार्ग पर ले आये। एक संस्कृत व्याकरण के सुपण्डित के साथ स्वामीजी ने पाणिनी अष्टाध्यायी का अध्ययन भी आरम्भ किया था। परन्तु वे अपना अध्ययन पूरा न कर सके। यहीं पर स्वाजी ने जयपुर के प्रधान सेनापति सरदार हरिसिंह को एकाएक छूकर उनमें भावान्तर कर दिया था। तर्क की कसौटी पर कसकर सरदार हरिसिंह जो न समझ सके थे, स्वामीजी के स्पर्श से उसकी सहज अनुभूति कर पाये थे।

जयपुर से स्वामीजी अजमेर गये। वहाँ पुष्कर तीर्थ, सावित्री तीर्थ, ब्रह्म मन्दिर, चिस्ती साहब का दरगाह आदि के दर्शन करके वे विशेष आनन्दित हुए। वहाँ से १४ अप्रैल, १८९१ को आबू पर्वत पर जा पहुँचे। आबू में प्रथम स्वामीजी ठाकुर मुकुन्द सिंहजी के यहाँ ठहरे हुए

थे।* जहाँ भी स्वामीजी गये वहीं उनके ओजस्वी मेधावी मुखमण्डल तथा सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व के द्वारा अनेक भक्त आकर्षित हुए। स्वामीजी भी निरपेक्ष भाव से राजा और रंक, पुरुष और और स्त्री सभी को अपनी अमृतमयी वाणी से तृप्त करते रहे। कभी तो वे मुक्तहस्त से भाव, भक्ति और ज्ञान की गंगा बहा देते, कभी भावमग्न हो जाते, कभी गाने लगते तो कभी गम्भीर विवेचना के माध्यम से ज्ञान चक्षु खोल देते और किसी-किसी को अपना शिष्यत्व प्रदान कर उसे मोक्ष का अधिकारी बना देते थे।

आबू पर्वत पर ही सर्वप्रथम खेतड़ी नरेश राजा अजीत सिंह और उनके मंत्री मुंशी जग मोहन का स्वामीजी के साथ साक्षात्कार हुआ था। पहले मुन्शी जगमोहन लाल जी की स्वामी जी से उनके एक मित्र के घर (श्री सत्येन्द्र नाथ मजुमदार के मत से कोटा के मुसलमान वकील महाशय के घर) पर भेंट हुई। प्रथम भेंट से ही मुन्शीजी स्वामीजी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने राजा अजीत सिंहजी से स्वामी के सम्वन्ध में भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजा स्वामीजी के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे एवं मुन्शीजी को स्वामीजी से पधारने के लिए प्रार्थना करने के लिए भेजा। ४ जून, १८९१ ई० को राजभवन में ही राजा अजीत सिंह जी ने अपने सद्गुरुदेव के दर्शन किये थे।

शीघ्र ही राजा अजीत सिंह स्वामीजी के देवत्व से प्रभावित हो गये। आबू रहते समय स्वामीजी प्रायः ही राजा अजीत सिंह के निवास स्थान जाते, उनके साथ ही सुबह में भोजन करते और बहुत से विषयों पर चर्चा करते। आबू से खेतड़ी लौटने का समय उपस्थित देख राजाजी ने स्वामीजी को उनके साथ खेतड़ी ले जाने का आग्रह प्रकट किया। आबू पर्वत से २४ जुलाई १८९१ ई० को स्वामीजी राजाजी के साथ अजमेर होते हुए २५ जुलाई को जयपुर पहुँचे और वहाँ अजीत सिंहजी के जयपुर के निवास स्थान में ही ठहरे।

३ अगस्त, १८९१ ई० को स्वामीजी को लेकर राजाजी जयपुर से खैरताल होकर ४ तारीख को कोट पहुँचे। कोट से ५ तारीख को पालकी में रवाना होकर ७ अगस्त को स्वामीजी खेतड़ी पहुँचे। यही स्वामीजी का खेतड़ी में प्रथम पदार्पण हुआ। कुछ दिनों पश्चात ही राजाजी ने स्वामीजी से मंत्र दीक्षा प्राप्त की। गुरु-शिष्य का सम्वन्ध अत्यन्त घनिष्ठ एवं मधुर था। राजा सदा ही स्वामीजी की सेवा करने के लिए करबद्ध प्रस्तुत रहते थे। स्वामीजी के मना करने पर भी निद्रा से पूर्व रात्रि में राजा स्वामीजी की पद-सेवा करते थे। स्वामीजी को भी आशा थी कि इस शिष्य के द्वारा भारत का कल्याण होगा। इसलिए उन्होंने राजा अजीत सिंह को केवल धर्म में ही सहारा नहीं दिया अपितु उनके लौकिक ज्ञानोपार्जन में भी सहारा दिया। राज प्रासाद के सर्वोच्च कमरे में (जहाँ अब श्रीरामकृष्ण का उपासना गृह है) स्वामीजी ने एक प्रयोगशाला बनवायी तथा राजा जी को भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा नक्षत्र विज्ञान की शिक्षा दी। स्वामीजी ने राजाजी को कानून का भी अध्ययन कराया था। खेतड़ी में रहते हुए स्वामीजी ने राजस्थान के सुविख्यात एवं माननीय पण्डित नारायण दासजी से पाणिनी व्याकरण का अधूरा अध्ययन पूरा किया। यह कहना न होगा कि खेतड़ी रहते समय स्वामीजी केवल राजा साहब के ही नहीं, जनता के भी अपूर्व आदर के पात्र हुए थे। धनी और दरिद्र सभी के द्वार स्वामीजी अनेकबार गये, धर्मोपदेश

*स्वामी जी के आबू पहाड़ पर ठहरने के सम्बन्ध में मतभेद है। लेखक ने पंडित झावर-मल्लजी की पुस्तक से उद्धत किया है। श्री सत्येन्द्र नाथ मजुमदार के अनुसार स्वामी पहले एक गुफा में रहने लगे। स्वामीजी को उस स्थिति में देखकर कोटा दरबार के एक मुसलमान वकील उन्हें अपने घर ले गये।

किया तथा भिक्षा भी ग्रहण की थी। एक दरिद्र ब्राह्मण शंकर लाल तो उनके अत्यन्त अनुरागी भक्त ही थे।

स्वामीजी के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ इसी खेतड़ी में ही घटी थीं। श्री झावरमल्लजी शर्मा के मतानुसार स्वामीजी का "विवेकानन्द" नाम राजा अजीत सिंह बहादुर ने ही रखा था। उससे पहले स्वामीजी ने अपने बहुत से नाम रखे थे और प्रायः वे पत्रों में अपने हस्ताक्षर 'विविदिषानन्द' नाम से करते थे।

इसी समय में एक मर्मस्पर्शी घटना हुई। एक दिन संध्या समय एक नर्तकी द्वारा गान का आयोजन हुआ। राजा बहादुर ने स्वामीजी को भी सभा में बुलवाया था। जैसे ही नर्तकी ने सभा में प्रवेश किया, स्वामीजी ने संन्यासी होने के नाते उसका गाना सुनना उचित न समझा और उठकर चलने लगे। नर्तकी ने मर्माहित होकर सूरदास का प्रसिद्ध पद 'प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो ......' आरम्भ किया। गान सुनते ही स्वामीजी के पाँव रुक गये, हृदय आकुल हो गया। उनके सामने मानो पुनः परम सत्य उद्भासित हो उठा, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—जगत् में ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु ही नहीं है।" स्वामीजी गद्‌गद् हो गये। उनके नेत्रों से अमृतधारा बह चली। स्वामीजी ने स्वयं लिखा है,—"वह गाना सुनकर मैंने समझा कि क्या यही मेरा संन्यास है? मैं संन्यासी हूँ और यह एक पतिता नारी है,- यह ऊँच-नीच की भावना – यह भेद-बुद्धि आज भी दूर नहीं हुई? सब प्राणियों में ब्रह्मानुभूति बड़ा ही कठिन कार्य है। चाण्डाल की बातें सुनकर भगवान् शंकराचार्य के मन से भेद बुद्धि लुप्त हो गयी थी। ऐसी तुच्छ-तुच्छ घटनाओं से कितने महान् फल उत्पन्न होते हैं. इसकी गणना कौन कर सकता है।" (खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द पष्ठ ९-१०) गायिका को घृणा की दृष्टि से देखने के कारण स्वामीजी ने उससे क्षमा माँगी, "माते! तुम्हारा ज्ञान गर्भित गाना सुनकर मेरी आँखें खुल गयीं।" उस दिन से स्वामीजी उसे 'माता' नाम से ही सम्बोधित करते थे।

खेतड़ी राजा के कोई पुत्र नहीं था। एक दिन अपना दुःख निवेदित कर, पुत्र कामना से राजा ने अपने गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की थी। कातर आवेदन की उपेक्षा करने में असमर्थ होकर स्वामीजी ने कहा, "अच्छा! श्री रामकृष्ण देव की कृपा से आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।" और बाद में हम देखते हैं राजाजी को पुत्र प्राप्ति हुई थी।

४ अक्टूबर १८९१ ई० को राजाजी स्वामीजी को लेकर राजस्थान की सुप्रसिद्ध देवी 'जिन माता' के दर्शनार्थ घोड़े पर सवार होकर गढ़ पहुँचे। वहाँ से सीकर, बजौर होते हुए 'जिन माता' के दर्शन के स्थान पर पहुँचे। पुनः १० अक्टूबर को सीकर से रवाना होकर ११ अक्टूबर १८९१ को खेतड़ी लौटे।

कुछ दिनों बाद ही स्वामीजी के हृदय में पुनः परिव्रजन की इच्छा तीव्र हो उठी और २७ अक्टूबर १८९१ को ५ महीने राजाजी के साथ व्यतीत कर स्वामीजी खेतड़ी से रवाना हुए। राजा बहादुर ने दुःखित अन्तःकरण से अनिच्छा के साथ स्वामीजी को विदाई दी। स्वामीजी गुजरात, महाराष्ट्र इत्यादि होते हुए पुनः भारत भ्रमण करते रहे।

स्वामीजी के आशीर्वाद से राजा अजीत सिंह को १८९३ ई० में एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम जय सिह रखा गया। बालक बड़ होकर अल्प जीवन होते हुए भी त्याग और वैराग्य से परिपूर्ण था। बालक के जन्म के उपलक्ष्य में राजाजी ने एक बड़े भारी उत्सव का आयोजन किया था। ऐसे समय पर वे गुरुदेव को कैसे भूल सकते थे? अतः स्वामीजी को लिवा लाने के लिए

उन्होंने अपने निजी सचिव मुन्शी जगमोहन लालजी को मद्रास भेज दिया। यद्यपि स्वामीजी अमरीका जाने की तैयारी में थे, फिर भी राजाजी के आग्रह को न टाल सके और २१ अप्रैल १८९३ ई० को स्वामीजी दूसरी बार खेतड़ी पधारे। राजकुमार के जन्मोत्सव पर खेतड़ी राज्य महोल्लास एवं आनन्द से खिल उठा था। स्वामीजी के शुभागमन ने मानो उसमें चार चाँद लगा दिये। राजा और प्रजा सभी ने दण्डायमान होकर स्वामीजी का स्वागत किया। चारों ओर धूम मची थी। स्वामीजी को पाकर राजाजी ने अपने को धन्य माना।

नवजात कुंवर जय सिंह को प्राण भर आशीर्वाद देकर स्वामीजी १० मई सन् १८९३ को जगमोहनजी के साथ अमरीका यात्रा के लिए बम्बई चले गये। स्वामीजी की अमरीकी यात्रा के लिए राजाजी की सहायता सराहनीय है।

स्वामीजी बम्बई से विदेश यात्रा पर गये। ११ सितम्बर, १८९३ ई० का दिन स्मरणीय है जिस दिन हमारे परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द विश्व विख्यात आचार्य विवेकानन्द बन गये। लगभग ४ वर्षों तक पाश्चात्य जगत में हिन्दू धर्म का प्रचार कर हमारे विश्व वन्दनीय स्वामीजी भारत लौटे। विश्व को आध्यात्मिकता से प्लावित कर अमरीका और यूरोप में वेदान्त की पताका फहराकर लौटने पर स्वामीजी का तीसरी बार खेतड़ी में शुभागमन हुआ १२ दिसम्बर, १८९७ ई० को। राजा अजीत सिंह भी अपनी यूरोप यात्रा समाप्त कर आये थे। उसी उपलक्ष्य में खेतड़ी में धूम-धाम मची हुई थी। ऐसे समय में स्वामीजी का पदार्पण खेतड़ी राज्य और उसकी प्रजा के लिए अत्यन्त सुखमय हो उठा। राजा अजीत सिंह ने स्वयं १२ मील चलकर अपने गुरुदेव का स्वागत किया, पद वन्दना कर ६ घोड़ों की गाड़ी पर स्वामीजी को बिठाकर राजधानी ले आये। जनसाधारण का हृदय उत्साह से भर गया और खेतड़ी के नागरिकों ने भोज, उज्जवल दीपालोक, अतिशबाजी आदि का आयोजन किया। पन्नालाल तालाब पर एक सभा का आयोजन हुआ जिसमें स्वामीजी और राजाजी दोनों को अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये। असंख्य लोगों की भीड़ का वर्णन मैंने पं० झाबरमल्ल जी से तालाब पर खड़े होकर ही सुना था।

स्थानीय जय सिंह विद्यालय (वर्तमान संस्कृत विद्यालय) में आयोजित एक सभा में राजाजी व स्वामीजी दोनों को ही विभिन्न समितियों द्वारा अनेक अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये। स्वामीजी ने वहाँ शिक्षा सम्बन्धी बहुत ही सुन्दर भाषण दिया था।

प्राचीन रीति के अनुसार जनता ने राजा को उपहार दिये तथा स्वामीजी को प्रणाम कर प्रत्येक ने दो-दो रुपये भेंट चढ़ाये। इस अनुष्ठान में दो घंटे लगे थे। खेतड़ी से स्वामीजी के विदा होते समय राजाजी ने उन्हें तीन सहस्र रुपये अर्पण किये थे जिन्हें बेलुड़ मठ भेज दिया गया था। २० दिसम्बर, १८९७ ई० को स्वामीजी राजाजी के साथ बग्गी गाड़ी पर जयपुर गये तथा वहाँ से १ जनवरी, १८९८ ई० को स्वामी जी अजमेर के लिए रवाना हुए।

स्वामी विवेकानन्दजी ने आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च के उद्देश्य से जीव में शिव की पूजा के हेतु रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। तभी से आज तक त्याग, सेवा और समन्वय का नारा लगाते हुए यह संस्था विश्व के कोने-कोने में आध्यात्मिक विचार धारा का प्रसार करने का प्रयास कर रही है। रामकृष्ण मिशन की शाखाएँ भारत के विभिन्न प्रान्तों एवं विदेशों में भी स्थापित हो चुकी हैं। किन्तु रामकृष्ण मिशन द्वारा दरिद्र एवं दुखी नारायण की सेवाओं का श्रीगणेश तो राजस्थान और उसमें भी खेतड़ी में ही हुआ।

१८९९ में सर्वप्रथम अकाल पीड़ित सहायता कार्य भी राजस्थान में ही प्रारम्भ हुआ किन्तु तब भी १९५८ तक मिशन की कोई भी शाखा राजस्थान में स्थापित नहीं हुई थी। यह तो राजा अजीत सिंह की स्वामीजी के प्रति भक्ति ही थी जिस कारण खेतड़ी को ही राजस्थान में सर्वप्रथम मिशन की शाखा होने का गौरव मिला है और उसके उपरान्त जयपुर को।

अधिकारी विचार

— स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

"वेदान्तसार" में वेदान्त के अधिकारी की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है :

अधिकारी तु विधिवदधीत वेद वेदांगत्वेन आपाततो अधिगत खिल वेदार्थो अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्य निषिद्ध वर्जन पुरः सरं नित्य नौमित्तिक प्रायः चित्त उपासनानुष्ठानेन निर्गत निखिल कल्मषतया नितान्त निर्मल स्वान्तः साधन चतुष्टय सम्पन्नः प्रभाता।

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार वेदान्त साधना के अधिकारी का पहला लक्षण है :

जिसने विधिवत् वेद तथा वेदांगों का अध्ययन कर आपाततः अखिल वेदार्थ को समझ लिया है। गुरु के निकट तप तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए निवास करना तथा उनके आज्ञानुसार वर्तन करना वेदों का अध्ययन करने की अनिवार्य विधि मानी जाती थी। शिक्षा, कल्प निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष ये ६ वेदांग कहे गये हैं। तथा इनका अध्ययन किए विना वेदाध्ययन संभव नहीं है। लेकिन वेदान्त की साधना से पूव वेदों में पूरी तरह पारंगत होना आवश्यक नहीं है इस बात को लक्ष्य करके आपाततः शब्द का प्रयोग उपर्युक्त परिभाषा में किया गया है। यह इस बात का भी द्योतक है कि वेदाध्ययन मात्र से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। यह वैदिक ज्ञान विना वेदान्त साधना के बौद्धिक ज्ञान मात्र रहता है। इस सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण तथा उनके शिष्य स्वामी तुरीयानन्द का वार्तालाप उल्लेखनीय है। तुरीयानंद पंचदशी आदि वेदान्त के ग्रन्थों के अध्ययन में विशेष रुचि रखते थे। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा कि वेदान्त का चरम निष्कर्ष ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, यही है न, या और कुछ। तुरीयानन्द को स्वीकार करना पड़ा कि हाँ, समग्र वेदान्त का निष्कर्ष बस यही है। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा कि इसी को जीवन में उतारने का प्रयत्न करो। तात्पर्य यह है कि वेदान्त की साधना के लिए वेदों की एक मोटी रूपरेखा, उनमें क्या लिखा है, यह जान लेना भर आवश्यक है। इसके लिए सभी वेदों में पारंगत होना आवश्यक नहीं है। फिर भी ज्ञान मार्ग के साधक को मेधावी तथा विचार में समर्थ होना चाहिए। विभिन्न योगों एवं साधना प्रणालियों में ज्ञानयोग ऐसा है जिसमें बौद्धिक पटुता एवं क्षमता की आवश्यकता एवं उपयोगिता अन्य मार्गों से अधिक है। शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि में "मेधावी पुरुषो विद्वान् ऊहापोह विचक्षणः" को अधिकारी का लक्षण बताते हैं।

आत्म-अनात्म, नित्य-अनित्य, आदि के सूक्ष्म विचार पर आधारित इस साधनपथ में बुद्धि की तीक्ष्णता अत्यन्त आवश्यक है। ऊहापोह विचक्षण का अर्थ है, वाद-विवाद में निपुण। यह गुण किसी विपक्षी को परास्त करने के लिए नहीं बल्कि वेदान्त विरोधी विचारों को सम्यक रूप से दूर करने के लिए आवश्यक है, जिससे स्वयं की निष्ठा को हानि न पहुँचे।

मल विक्षेप :

उत्तम अधिकारी का दूसरा लक्षण है नितान्त-निर्मल स्वान्तः अथवा शुद्ध चित्त। इस परमावश्यक चित्त शुद्धि के लिए जिन तीन उपायों का उल्लेख किया गया है, वे हैं: (क) काम्य तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग, (ख) नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित आदि विहित कर्मों का अनुष्ठान तथा (ग) उपासना। स्वर्गादि प्राप्ति के लिए किये जाने वाले यज्ञ विशेष काम्य कर्म की श्रेणी में आते हैं। हिंसा चोरी मद्यपान आदि कुकर्म सभी शास्त्रों द्वारा निषिद्ध हैं। संध्यावन्दनादि नित्य-कर्म कहे जाते हैं। त्योहार पुत्र-जन्मादि विशेष अवसरों पर किये जाने वाले कर्म नैमित्तिक कहलाते हैं। पाप क्षय के लिए किये जाने वाले व्रत उपवासादि प्रायश्चित कर्म होते हैं। इन तीनों प्रकार के कर्मों का गृहस्थ के लिए शास्त्रीय विधान है। इनका मुख्य उद्देश्य चित्त शुद्धि है। सगुण ईश्वर की भक्ति, चिन्तन तथा ध्यान उपासना कहलाता है।

आधुनिक संदर्भ में इन विभिन्न प्रकार के कर्मों के अर्थ में थोड़ा अन्तर हो जायेगा। उदाहरण के लिए, आजकल स्वर्गादि की मान्यताएँ काफी क्षीण हो गयी हैं, और लोग उनकी प्राप्ति के लिए यज्ञादि भी नहीं करते। लेकिन, नाम-यश धन संपद आदि की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले शुभाशुभ कर्म आज के संदर्भ में काम्य कार्यों की श्रेणी में आते हैं। उसी तरह हिंसा, चोरी आदि कुकर्म तो सामाजिक दृष्टि से भी निषिद्ध हैं, लेकिन इनके अनेक सूक्ष्म रूप आधुनिक समाज में प्रचलित हैं। उनका त्याग साधक के लिए परमावश्यक है। संध्यावन्दनादि का भी अब वह रूप नहीं रहा जो पुरातन काल में था। फिर भी सभी धर्मों के अनुयायियों को धर्म शास्त्रों द्वारा किसी न किसी प्रकार के दैनिक अनुष्ठान का आदेश दिया जाता है। ईसाइयों का मास, मुसलमानों का पांच नमाज, हिन्दुओं की नित्य पूजा इसी श्रेणी में आती हैं। नैमित्तिक कर्म भी किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं। पुराकाल में प्रायश्चित कर्मों में लोगों की अधिक आस्था थी। जाने अनजाने किये गये कुकर्मों का फल हमें किसी अज्ञात भविष्य काल में भोगना पड़े, इसके बदले उसको प्रायश्चित के माध्यम से नष्ट कर दिया जाये, यह मान्यता प्रचलित थी और लोग कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत किया करते थे। साधक के लिए इस प्रकार के व्रतादि चित्तशुद्धि के हेतु बहुत उपयोगी साधन हैं।

उपर्युक्त सभी कर्म फलाकांक्षा का त्याग कर ईश्वरार्पण बुद्धि से करने से चितशुद्धि करते हैं। लेकिन, यदि इस तरह की विशुद्ध भावना से यदि न किये जायें तो वे इह लोक या परलोक के सुख प्रदान कर सकते हैं। साधक को यह अभीष्ट नहीं है। वह तो चित्तशुद्धि चाहता है, जिससे वह ज्ञान का अधिकारी हो सके। वेदान्त में मल, विक्षेप तथा अज्ञान, ये तीन बाधाएं बतायी गयी हैं। तमोगुण प्रधान मल निष्काम कर्म द्वारा रजोगुणात्मक चित्त विक्षेप उपासना अर्थात् ध्यान और एकाग्रता द्वारा तथा सत्व प्रधान अज्ञान ज्ञान द्वारा दूर होता है। मल और विक्षेप रहित साधक उत्तम अधिकारी होता है। मल रहित मध्यम तथा मल विक्षेप तथा अज्ञान तीनों से युक्त व्यक्ति वेदान्त का अधम अधिकारी होता है।

(३) उत्तम अधिकारी का तीसरा लक्षण है उपासना: (उप+आसन) का शाब्दिक अर्थ है, परमेश्वर या इष्ट के निकट जाना। देवतादि की ओर मानसिक रूप से अग्रसर होना, तथा अन्त

में उसके साथ एकाकार हो जाना उपासना है। सभी प्रकार की द्वैतपरक साधनाएं, जिनमें चित्त को बाह्य आलम्बनों की सहायता से या बिना किसी आलम्बन के इष्ट पर एकाग्र किया जाता है, उपासना के अन्तर्गत आते हैं। मूर्ति या प्रतीकोपासना, नाम जप, भजन कीर्तन ध्यान एवं एकाग्रता का अभ्यास आदि सभी उपासनाएं हैं। इनका मुख्य उद्देश्य एकाग्रता एवं ईश्वरीय सत्ता का साक्षात्कार है। सामान्यतः उपासनाओं के फलस्वरूप साधक को उच्चतम द्वैत अनुभूति हो सकती है। अहंग्रहोपासना ओंकारोपासना आदि कुछ ऐसी उपासनाएं भी हैं जो अन्ततोगत्वा अद्वैत साक्षात्कार करवा सकती हैं। अद्वैतानुभूति हो या न हो उपासना से चित्त एकाग्र होता है। उसके विक्षेप दूर होते हैं; तथा रजोगुण का नाश होता है। यही कारण है है कि उपासना को भी ज्ञान मार्ग में भी एक अनिवार्य पूर्व साधन एवं अधिकारी के लक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है। कृतोपास्ति साधक श्रेष्ठ अधिकारी माना जाता है।

महत्त्वाकांक्षा

—स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

वड़ा ही लुभावना शब्द है यह ? हम जहाँ हैं, वहाँ से आगे बढ़ें; जिस समाज में रह रहे हैं, वह हमें माने, हमारी माने; लोग हमारे अनुवर्ती हों, हमारी आज्ञा का पालन करें—इसी चाहत के कारण प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ करने में लगा है। जगज्जेता सिकंदर से लेकर सम्राट अशोक तक, नेपोलियन से लेकर श्रीमती इन्दिरा गाँधी तक हर कोई हमारी महत्त्वाकांक्षा का आदर्श बन जाता है। किराये के मकान में रहते हैं तो हमारा अपना घर हम चाहते हैं। टी० वी०, वीडियो, फ्रिज और आधुनिक उपकरण हमारे घर में हों ताकि लोग हमें सम्पन्न समझें—यह हमारी कामना होती है। दो टूक बात कही जाय तो हम क्या बनें, इसकी अपेक्षा लोग हमें क्या समझें, इस पर हम अधिक ध्यान देते हैं। यही महत्त्वाकांक्षा है, महत्त्व की आकांक्षा है। बीरबल की कहानी, याद होगी ही—हमारी लकीर दूसरों की लकीर से वड़ी कैसे बने, यही हमारी चिन्ता का विषय होता है। हम जो भी कुछ पढ़ते हैं, पाते हैं, इकट्ठा करते हैं, प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, उन सबके पीछे अपनी आवश्यकता, अपना उत्थान या अपने विकास को हम कम ही महत्त्व देते हैं। हम जो भी कुछ करते हैं, वह समाज की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए। अथवा यों कहें कि समाज की दृष्टि में हमारा मूल्यांकन यही हमारी प्रगति की पहचान होती जा रही है

क्या यह सब ठीक है ? थोड़ा विचार करें। क्या है यह महत्त्वाकांक्षा ? सीधा शब्दार्थ तो है महत्त्व की आकांक्षा, महत्त्व की कामना। कामना उसी वस्तु की होती है, जो आज अप्राप्त है। जो प्राप्त है, उसे कोई नहीं ढूँढता। जो प्राप्त नहीं है, उसे पाने का प्रयास किया जाता है। जब हम कहते हैं कि हमारी महत्त्वाकांक्षा है, उस समय हम अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार करते हैं कि

हमारा महत्त्व नहीं है, हम महत्त्वहीन हैं। इस पहलू पर विचार करें तो कोई यह नहीं कहेगा कि हमारी कोई महत्त्वाकांक्षा है क्योंकि महत्त्वाकांक्षा की स्वीकृति वर्तमान में महत्त्वहीनता की स्वीकृति है। क्या हम सचमुच महत्त्वहीन हैं। इस संसार में कीट-पतंग भी तो महत्त्वहीन नहीं है, उनकी भी अपनी कोई-न-कोई विशेषता है, कुछ-न-कुछ महत्ता है। बीरबल की लकीर की भाँति यह सापेक्ष होती है। हम किसी की तुलना में छोटे होते हैं तो दूसरे किसी की तुलना में बड़े होते हैं, महान् होते हैं। अब ऐसी स्थिति में हम महत्ता की, महत्त्व की परिभाषा निश्चित नहीं कर सकते। यह महत्त्वाकांक्षा एक मृगतृष्णा है, क्षितिज की रेखा है। जहाँ हम है, वहाँ से चार कदम आगे बढो तो क्षितिज भी उतना आगे खिसक जाता है; मृगतृष्णा का जल उतना ही चार कदम दूर हट जाता है। तो क्या हम महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के नाम पर मृगजल से प्यास बुझाने की, क्षितिज को छूने की अंधी दौड़ तो नहीं लगा रहे ? थोड़ा विचार हमें सावधान बना देगा।

आप कहेंगे कि जीवन में कोई लक्ष्य ही न रहा तो जीवन रसहीन हो जायेगा, निरर्थक लगने लगेगा। बिल्कुल ठीक बात है, जीवन का कोई-न-कोई लक्ष्य, कोई-न-कोई उद्देश्य तो होना ही चाहिए। पर हाँ, महत्त्वाकांक्षा—यह उद्देश्य उचित नहीं है। लक्ष्य हो स्वयंपूर्णता का, उद्देश्य हो आत्मनिर्भरता का। जीवन में हम जो भी कुछ करते हैं, कर सकते हैं, उससे स्वयंपूर्ण भी तो बना जा सकता है। ध्यान रहे, स्वयंपूर्णता की महत्ता अन्य के सापेक्ष नहीं होती, आत्मनिर्भरता का महत्त्व पहचानने के लिए दूसरे से तुलना नहीं करनी पड़ती। केवल लौकिक जीवन में ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से भी स्वयंपूर्णता ही लक्ष्य बनाने योग्य है। समस्त जगत् का अधिष्ठान जो हमारी आत्मा है, उसका बोध अपने आप में पूर्ण होने की पहचान है। दूसरे के साथ तुलना में छोटे-बड़े का, सुख-दुख का द्वंद्व है। अपने आप में अपनी पूर्णता को जान लेने पर जिसकी प्राप्ति होगी, वही वास्तविक महत्त्व है। आइए, ऐसे महत्त्व की आकांक्षा करें, जो पूर्णरूप से निरपेक्ष है, जहाँ सुख-दुःख का द्वंद्व नहीं सतायेगा। भगवती श्रुति भी हमें आश्वस्त करती है—

तत्र को मोहः, कः शोकः ततो न विजुगुप्सते।

—०—

"आदमी जो भी करे, चाहे दुनिया में रहकर कारीगर, व्यापारी तथा राज्य कर्मचारी रहे या संसार से विरक्त हो धर्म की साधना में अपना समय लगा दे। उसे अपना काम मन लगाकर करना चाहिए। उसे लगन से, पूरी ताकत से काम करते हुए कमल के समान रहना चाहिए। कमल पानी में उपजता है, लेकिन जल से अलिप्त रहता है। अगर ईर्ष्या और द्वेष के बिना आदमी जीवन-संग्राम में जुट जाए, संसार में स्वार्थ का नहीं, सत्य का सहारा पाकर जीवन बिताए तो निश्चय ही हर्ष, शान्ति और आनन्द उसके मन का लक्षण हो जाता है।"

—भगवान बुद्ध

अबूझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प (२)

--ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द

अब समस्या थी कि 'साइट प्लान' कैसे बनाया जाय। मैंने शासन को प्रस्तुत करने के लिए अपने तरीके से एक 'साइट प्लान' बनाया था। इतने में हैदराबाद के श्री जी० वी० रेड्डी से अयाचित सहायता मिल गयी। श्री रेड्डी आन्ध्र के प्रसिद्ध वास्तुपति हैं। वे आन्ध्र प्रदेश शासन के अवर सचिव एवं 'शहर विकास योजना विभाग' के प्रमुख के रूप में उसी समय अवकाश को प्राप्त हुए थे। मुझे रायपुर आश्रम के मुख्य द्वार का नक्शा बनवाना था, जिसके द्वार भव्य हों और आश्रम के मन्दिर के अनुरूप दिखे। किसी ने मुझे बताया था कि रेड्डीजी हैदराबाद से कलकत्ता जानेवाले हैं, यदि मैं उनसे अनुरोध करूँ तो रायपुर आने में उन्हें प्रसन्नता ही होगी। मैंने उन्हें पत्र लिखा। उन्होंने तुरत उत्तर दिया कि वे नागपुर होकर कलकत्ता चले जाएँगे और बीच में रायपुर उतर जाएँगे। वे रायपुर आये। मैं तब बाहर था। उन्होंने मुख्य द्वार की नाप-जोख की। उन्होंने देखा कि आश्रम के कुछ लोग नक्शा लेकर विचार-विमर्श कर रहे हैं। उनके पूछने पर बताया गया कि रायपुर आश्रम बस्तर जिले के नारायपुर स्थान में 'अबूझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प' अपने हाथ में ले रहा है, उसी के 'साइट प्लान' को लेकर चर्चा हो रही है। रेड्डीजी ने कहा, 'यदि आप इसमें भी मेरी सहायता चाहें तो मुझे यह करके बड़ी प्रसन्नता होगी।"

और इस प्रकार श्री रेड्डी का हमारे इस प्रकल्प के साथ सम्बन्ध जुडा। यह पूरी तरह से उनकी निःशुल्क सेवा थी। उनकी इस अमूल्य सेवा के बिना इस प्रकल्प का काम आगे ही नहीं बढ़ सकता था। ये नारायणपुर गये, स्थान देखा और शीघ्रातिशीघ्र एक सुन्दर 'साइट प्लान' तथा विभिन्न भवनों के नक्शे बनाकर भेज दिये। यह एक दैवी सहायता थी।

सितम्बर १९८४ में मैं बेलुड़ मठ (कलकत्ता) गया हुआ था। वहाँ पूज्यपाद भरत महाराज (स्वामी अभयानन्द जी) से मिलने पर उन्होंने एकाएक पूछा, "क्या तुम लोग बस्तर में भी कुछ कर रहे हो?" मैंने उत्तर में कहा, "जी हाँ महाराज, कुछ करने की इच्छा है। योजना बन रही है।" वे बोले, "हाँ, जरूर करो, और अच्छे रूप में करो।"

मैं भरत महराज के अचानक यह प्रश्न पूछने का कारण तब नहीं जान पाया था। बाद में पता चला कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी कुछ समय पहले उनसे मिलने बेलुड़ मठ आयी थीं, तब उन्होंने बस्तर में रामकृष्ण मिशन द्वारा कार्य किये जाने के सम्बन्ध में उनसे अनुरोध किया था। श्रीमती गाँधी भरत महाराज की अत्यन्त स्नेहभाजन थीं। यह इसी से पता चलता है कि वे उन्हें 'भरत मामा' कहकर पुकारा करती थीं। यह बात इन्दिराजी ने स्वयं मुझे बतायी थी।

वह १९६५ की २ जुलाई थी। श्रीमती गाँधी तब सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की मंत्री थीं। वे रविशंकर विश्वविद्यालय के शिक्षण विभाग का उद्घाटन करने रायपुर आयी हुई थीं। मैं तब विश्वविद्यालय कार्यकारिणी का एक सदस्य था।

रात्रि में उनके सम्मान में विश्वविद्यालय ने एक भोज दिया था। हम लोग उनकी अपेक्षा करते हुए बैठे थे। वे आयीं और अपने लिए नियत स्थान पर न बैठ मैं जहाँ बैठा था उसके पास की कुर्सी की ओर आयीं—यह कहते हुए कि "मैं स्वामीजी के पास बैठूँगी," और आकर बैठ गयीं। उनके बैठने पर सभी बैठे। उन्होंने मुझसे मेरा परिचय पूछा। फिर रामकृष्ण मिशन के साथ अपनी माता स्व० श्रीमती कमला नेहरु के सम्बन्ध बताते हुए उन्होंने ऐसी कई बातें कहीं, जो मेरे लिए नयी थीं। बोलीं, "आप लोग जिनको भरत महाराज कहते हैं, उनको मैं 'भरत मामा' कहती हूँ। मेरी ममी ने स्वामी शिवानन्दजी से मंत्र-दीक्षा ली थी। जब-जब स्वामीजी बनारस आते, तो मेरी ममी उनसे मिलने इलाहाबाद से वहाँ जातीं। मैं तब बहुत छोटी थी। कभी-कभी पापा कार चलाकर ले जाते। वे ममी को और मुझे बनारस के आश्रम में उतार जाते। तब मेरी रखवाली का भार भरत महराज पर रहता, जो स्वामी शिवानन्दजी के सेवक थे। तभी से मैं उन्हें 'भरत मामा' कहकर पुकारती आ रही हूँ।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें उन्होंने बतायीं, पर उनका संबंध इस लेख से न होने के कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार १९८४ में ये कई घटनाएँ अप्रत्याशित रूप से घटित हुईं, जिनकी परिणति उस प्रकल्प के रूप में हुई, जिसका इतिहास यहाँ पर वर्णित हो रहा है। श्री रेड्डी ने जो 'साइट प्लान' तथा भवनों के नक्शे बनाये, उन सबकी लागत २२५ लाख रु० कूती गयी। सब कुछ बहुत बढ़िया था, पर उसने मेरी परेशानी को एक दूसरी दृष्टि से बढ़ा दिया। ३६ लाख रु० की योजना को ही बेलुड़ मठ से स्वीकृत कराने में मुझे दिक्कत हुई थी। अब तो वह लगभग छः गुनी बड़ी हो गयी थी। बहुत ऊहापोह के बाद मैंने वह सब आखिर बेलुड़ मठ भेज ही दिया।

अक्टूबर १९८४ में जब मैं अमरकंटक गया था, वहाँ पर दो व्यक्ति मुझसे मिलने आये। एक थे स्वामी असीमानन्द तथा दूसरे, श्री भास्कर। उन्होंने मुझसे कहा, "सुना है आप बस्तर में वनवासियों की सेवा करने के लिए योजना बना रहे हैं।" मैं बोला, "हाँ, ऐसी बात चल रही है।" "यदि आपको मंजूर हो तो हम दोनों भी उस योजना में काम करना चाहेंगे"— वे बोले।

मुझे समर्पित कार्यकर्ताओं की निहायत जरूरत थी और ये बिन बुलाये मेरे पास आये। मैंने उनसे कहा, "हाँ, मुझे मंजूर है, पर काम शायद जनवरी १९८५ तक शुरू हो पाएगा।" वे बोले, "कोई बात नहीं, हम २-३ महीने गुजरात घूमकर आते हैं, फिर आपके पास आ जाएंगे।"

इस प्रकार स्वामी असीमानन्द और श्री भास्कर को लेकर जनवरी १९८५ से नारायणपुर में कार्य शुरू किया गया। एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर वहाँ बच्चों के लिए एक वाचनालय प्रारम्भ किया गया। असीमानन्द ने स्थानीय लोगों से सम्पर्क का काम शुरू किया तथा शासन से ४२ एकड़ का जो भूमिखण्ड मिलना था, उसके लिए प्रयास किये। प्रारम्भ का काम अत्यन्त कठिन था। स्थानीय लोगों में अपनी पहचान बनानी होती है। यह कार्य असीमानन्द और भास्कर इन दोनों बन्धुओं ने बड़ी खूबी के साथ सम्पन्न किया।

इधर इस २२५ लाख रु० की योजना के सन्दर्भ में चर्चा करने के लिए मुझे बेलुड़ मठ बुलाया गया। तब रामकृष्ण मिशन की कार्यकारिणी की बैठक थी। वह फरवरी १९८५ की १६ तारीख थी। सदस्यों ने अनेक प्रश्न पूछे और अपनी शंकाओं का समाधाना चाहा। पूज्यपाद अध्यक्ष महराज, स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने भी

इस प्रकल्प के कुछ मुद्दों पर प्रश्न किया। अन्ततः प्रकल्प उन लोगों के द्वारा पारित कर लिया गया। यह भी अपने आप में मेरे लिए एक अचरज की बात थी।

प्रकल्प के पारित होने पर मैंने प्रदेश शासन को नये सिरे से आवेदन बनाकर दिया, जिसकी लागत २२५ लाख रु० की थी। शासन ने अपने अधिकारियों की विशेष बैठक में इस प्रकल्प को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया।

औपचारिक रूप से जमीन हमारे हाथ में ३१ मार्च १९८५ को आयी। उस दिन रामनवमी थी। अब प्रश्न था 'साइन प्लान' के अनुसार 'ले आउट' तैयार करना। यह एक जटिल कार्य था। पर श्री डी० डी० शर्मा तथा श्री एस० एल० कुमरावत के सहयोग से यह समस्या भी हल हो गयी। ४ मई, १९८५ को वैशाखी पूर्णिमा (बुद्ध जयन्ती) थी। उस शुभ अवसर पर भूमि पूजन करके प्रथम दिन शेड के निर्माण की तैयारी शुरू कर दी गयी।

अब मुझे एक ऐसे नायक की आवश्यकता थी, जो इस प्रकल्प के बोझ को अपने कन्धों पर धारण कर सके। यह चुनौतियों से भरा कार्य था। बेलुड़ मठ ने इस कार्य के मिए स्वामी निखिलात्मानन्द को देने का प्रस्ताव किया, जिसकी स्वीकृति मैंने तत्काल दे दी। मेरे एक घनिष्ठ मित्र श्री सुविमल चटर्जी, भी अपना सहयोग इस कार्य के लिए देने का प्रस्ताव लेकर मेरे पास आये। वे शासकीय लाहिड़ी महाविद्यालय, चिरमिरी के प्राचार्य थे। वे अपनी लगभग २८ वर्षों की नौकरी छोड़, सारी शासकीय सुविधाएँ छोड़, इस प्रकल्प में सहयोगी बनना चाहते थे। यह मुझे मंजूर नहीं था, क्योंकि उन्हें अपना परिवार भी देखना था।

इसी बीच मैं अपनी दाहिनी आँख की चिकित्सा के लिए यूरोप चला गया। सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री वसन्त कुमार बिड़ला की आर्थिक सहायता से मेरी यह यात्रा हुई थी। उन्होंने मास्को के विश्वप्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सालय में प्रोफेसर फेदरोव से मेरी चिकित्सा की व्यवस्था की थी। मैं कुछ दिन स्वीट्जरलैंड के जुग नामक स्थान में बसन्त कुमार जी के काटेज में ठहरा हुआ था। वहाँ पर ३० अप्रैल १९८५ को श्री गंगा प्रसाद बिड़ला से भेंट हुई। उन्हें स्वामी आत्मस्थानन्दजी ने हमलोगों के अबुझमाड़ प्रकल्प के सम्बन्ध में बताया था। उन्होंने मुझसे उसकी बात पूछी। मैंने अब तक उस योजना के सम्बन्ध में जो प्रगति हुई थी, वह बतलायी। वे बोले, "स्वामीजी, आप भारत लौटकर कृपया मुझसे मिलिएगा। मैं भी आपको कुछ सहयोग देना चाहूँगा। मुझे वनवासी तरुणों के प्रशिक्षण में रुचि है। यदि आप ऐसी कोई योजना बना सकें जिससे ये तरुण स्वावलम्बी बनें और अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हों, तो मुझे खुशी होगी।"

मास्को में आँख की सफल चिकित्सा कराकर मैं वापस भारत लौटा। दिल्ली उतरकर बम्बई आया। वहाँ से इन्दौर और भोपाल। मैंने भी चटर्जी को भोपाल आने का सन्देशा भिजवाया था। मेरे मन में एक विचार आया था कि क्यों न उन्हें प्रतिनियुक्ति पर अपने प्रकल्प में लेने की चेष्टा की जाय। भोपाल में हमने सम्बन्धित अधिकारियों से ९ जून, १९८५ को एक बैठक की। यद्यपि किसी स्वैच्छिक संस्था में किसी शासकीय अधिकारी की प्रतिनियुक्ति नहीं होती, फिर भी हमारे प्रकरण को विशेष दर्जा देते हुए प्रदेश शासन ने हमारा अनुरोध स्वीकार कर लिया और इस प्रकार श्री चटर्जी की प्रतिनियुक्ति 'अबुझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प' में 'समन्वय अधिकारी' के रूप में हो गयी। तबतक स्वामी निखिलात्मानन्द का स्थानान्तरण भी बेलुड़ मठ ने रायपुर कर दिया था। इस प्रकार हमारे नारायणपुर केन्द्र को इन दोनों बन्धुओं की सेवाएँ प्राप्त हो गयीं और वहाँ का कार्य तेजी से आगे बढ़ने लगा।

२ अगस्त १९८५ को पहला 'टिन शेड' बनकर तैयार हुआ। उसी दिन 'नव आश्रम प्रवेश' की योजना बनायी गयी थी। अतएव उस दिन प्रातः 'टिन-शेड' के एक कमरे में श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्द के चित्रपटों को स्थापित कर उसे पूजाघर का रूप दिया गया तथा पूजा कर विधिवत् 'नव आश्रम प्रवेश' का नेग सम्पन्न किया गया। उस दिन से किराये के मकान से आश्रम अपनी जगह पर आ गया। इसके निर्माण कार्यों में ओर भी गति आ गयी।

इस बीच मैंने श्री गंगा प्रसाद बिड़ला को अपने भारत लौट आने की सूचना दे दी थी। उन्होंने उत्तर में लिखा कि यदि मुझे असुविधा न हो तो उनसे हैदराबाद में मिल लूँ। मैं ९ सितम्बर १९८५ को उनसे हैदराबाद में मिला। वनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र की योजना उनके सम्मुख रखी और उन्होंने चर्चा के अन्त में इस प्रशिक्षण-कार्य के लिए १० लाख रु० देने की बात कही। कुछ ही दिनों में यह राशि हमें प्राप्त हो गयी और इस प्रकार हमारी वनवासी युवा प्रशिक्षण योजना को एक ठोस रूप प्राप्त हो गया।

७ दिसम्बर १९८५ को मध्य प्रदेश के राज्यपाल महामहिम प्रो० के० एम० चांडी का नारायणपुर आगमन हुआ। उन्होंने आश्रम-परिसर में 'उचित मूल्य क्रय-विक्रय केन्द्र भवन' का शिलान्यास किया तथा जनसभा को सम्बोधित करते हुए रामकृष्ण मिशन के सेवा कार्यों की बड़ी प्रशंसा की।

८ दिसम्बर १९८५ को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, बेलुड़-मठ के महाउपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज नारायणपुर पधारे तथा उन्होंने 'आवास गृह-समूह' की प्रथम इकाई का उद्घाटन किया। आश्रम के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए ऐसे ५२ आवासगृह बनेंगे, जिनमें ३ बनकर तैयार थे। ९ दिसम्बर, को अपराह्न में भूतेशानन्दजी ने 'साधु निवास' का शिलान्यास किया तथा उसी के उपरान्त श्री पी० पी० माथुर, जिलाधीश, बस्तर की अध्यक्षता में उन्होंने एक जनसभा को सम्बोधित किया। १० दिसम्बर की सुबह कुछ जिज्ञासु भक्तों ने पूज्यपाद भूतेशानन्दजी से मंत्रदीक्षा ली।

१२ जनवरी १९८६ को अंगरेजी तिथि के अनुसार विवेकानन्द जयन्ती के अवसर पर, जिसे भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में घोषित किया है,। नारायणपुर में विद्यार्थियों एवं ग्रामवासियों की एक विशाल रैली निकाली गयी। क्षेत्र के वनवासी बन्धुओं ने बड़ी संख्या में इस रैली में भाग लिया।

२६ जनवरी को मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री मोती लाल वोरा ने 'विवेकानन्द आरोग्यधाम' के बाल रोगी चिकित्सा विभाग का उद्घाटन किया तथा साथ ही 'विवेकानन्द चल-चिकित्सालय' का भी। उन्होंने इस अवसर पर एक एकत्र विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए आश्रम को बधाई दी कि ऐसे दुर्गम क्षेत्र में उसने वनवासियों एवं गिरिजनवासियों की सेवा का बीड़ा उठाया है। उन्होंने आश्राम की जलप्रदाय-योजना की पहली इकाई का भी बटन दबाकर उद्घाटन किया। तब से इन चिकित्सा-सुविधाओं का लाभ क्षेत्र के बनवासी नरनारी बड़ी संख्या में ले रहे हैं। पहले यह आशंका व्यक्त की गयी थी कि आदिवासी लोग दवा लेने नहीं आएँगे, वे झाड़-फूंक में अधिक विश्वास करते हैं। पर हमें यह देख सुखद आश्चर्य हुआ कि नारायणपुर के हमारे इस चिकित्सालय में लगभग १०० रोगी रोज आते हैं, चल-किकित्सालय भी १०० गाँवों के लोगों को अपनी सेवाओं का लाभ दे रहा है। अबुझमाड़ के भीतर के क्षेत्रों में भी ऐसी चिकित्सालय-सेवा की माँग हमसे वहाँ के लोगों द्वारा की जा रही है, जिसे हम शीघ्र ही शुरू करने जा रहे हैं।

इसी बीच आश्रम के कार्यकर्त्ता अबुझमाड़

क्षेत्र के भीतर जाकर इरकभट्टी गाँव को देख आये। यह गाँव नारायणपुर से लगभग ३४ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। निश्चय किया गया कि ३१ मार्च १९८६ के पहले तक आश्रम अबुझमाड़ के दो स्थानों पर—इरकभट्टी एवं कुतुल में—सेवा केन्द्र खोल लेगा। कुतुल अबुझमाड़ के प्रायः बीच में है और नारायणपुर से ४३ कि० मी० की दूरी पर अवस्थित है। अभी तक कुतुल में कोई भी गाड़ी नहीं गयी थी, रास्ता इतना दुर्गम है। वहाँ सबसे पहले पहुँचनेवाली गाड़ी आश्रम की ही जीप थी। ८ मार्च १९८६ को, शिवरात्रि, के शुभ अवसर पर, इकरभट्टी में झोंपड़ी बनाकर श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द के चित्रपटों को स्थापित कर उनकी पूजा की गयी और प्राथमिक शाला शुरू कर दी गयी। वहाँ सेवा केन्द्र के परिसर में एक कुँआ खोदने का काम भी प्रारम्भ कर दिया गया। ९ मार्च को हमलोग कुतुल गये और सेवा केन्द्र के उपयुक्त स्थल का चुनाव किया। साथ ही सेवा-केन्द्र के निर्माण के लिए भूमि-पूजन भी। इस कार्य में पूरे गाँव के आबाल-वृद्ध नर-नारी सम्मिलित हुए। इस केन्द्र का शुभारम्भ १९ मई को श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द के चित्रपटों की स्थापना के साथ कर दिया गया।

३ जून को बस्तर सम्भाग के आयुक्त श्री जे० एस० कपानी ने हमारे इरकभट्टी एवं कुतुल के सेवा-केन्द्रों में 'उचित मूल्य दूकान' का उद्घाटन किया। प्रदेश के आदिम जाति कल्याण विभाग के राज्यमंत्री श्री रणवीर शास्त्री ने ४ जून को इरकभट्टी सेवा-केन्द्र के 'विवेकानंद विद्यामंदिर' के उद्घाटन के साथ नलकूप का भी उद्घाटन किया तथा ५ जून को कुतुल सेवा-केन्द्र को भेंट दी। वहाँ भी उन्होंने आश्रम के 'विवेकानन्द विद्या-मन्दिर' एवं नलकूप का औपचारिक उद्घाटन किया।

इन सब सेवा-कार्यों का अबुझमाड़ की जनता पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि २ जुलाई १९८६ से नारायणपुर में प्रारम्भ होनेवाले आवासीय 'विवेकानन्द विद्यापीठ' में भरती होने के लिए अबुझमाड़ के बच्चों की कतार लग गयी। हम लोगों ने प्राथमिक स्तर की पहली बार कक्षाएँ शुरू कीं, जिनमें ६३ लड़कों ने नाम दर्ज कराये। पर हमारी क्षमता इस वर्ष ४० से अधिक छात्र रखने की नहीं थी। अतएव हमने किसी प्रकार ४३ छात्रों को स्थान दिया और इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में हमारी सेवा-योजना का प्रथम चरण प्रारम्भ हुआ। हम अपने इस विद्यापीठ को वनवासी लड़कों के लिए 'पब्लिक स्कूल' बनाना चाहते हैं, जहाँ उन्हें आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ व्यवसाय की भी शिक्षा मिले। इस कार्य हेतु हमने 'विवेकानन्द वनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र' की योजना बनायी, जिससे उस क्षेत्र के युवकों को दस्तकारी, कृषि-बागवानी, एवं विभिन्न कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण दिया जा सके। १६ जुलाई को १० युवकों को लेकर यह कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया। इस केन्द्र की सेवाओं का लाभ विद्यापीठ के लड़कों को भी मिलने लगा।

२ अगस्त १९८६ को नारायणपुर के हमारे इस केन्द्र का प्रथम स्थापना दिवस था। इस समारोह के लिए मुख्य अतिथि के रूप में भिलाई इस्पात संयंत्र के प्रबन्ध संचालक श्री के० आर० संगमेश्वरन् पधारे तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता बस्तर संभाग के आयुक्त श्री सम्पतराम ने की।

इस अवसर पर श्री संगमेश्वरन् ने औपचारिक रूप से इस बनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र का उद्घाटन किया, जहाँ अभी कृषि, बागवानी, बढ़ईगिरी, दर्जिगिरी, बाँस-काम, मधुमक्खी-पालन और सवाई रस्सी बनाने का काम आदि सिखाने की व्यवस्था है। इसके साथ ही लड़कों को शिक्षण-कार्य एवं प्राथमिक उपचार का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। शीघ्र ही इसमें लुहारी, बुनाई, हथकरघा, गो-पालन, मत्स्य-पालन, रेशम कीड़ा-पालन, वन-

संरक्षण, लेथ-काम, वहाँ लगनेवाले ट्रैक्टर-पम्प आदि मशीनों की मरम्मत का काम, आदि व्यवसायों का प्रशिक्षण भी जोड़ा जाएगा। वर्ष में प्रशिक्षण के दो सत्र होंगे और एक सत्र की अवधि छः महीनों की होगी। हर सत्र में २० युवक प्रशिक्षण के लिये जाएँगे। ये आश्रम में ही रहेंगे तथा इनके आवास एवम् भोजन का भार आश्रम वहन करेगा, साथ ही प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को ३०) मासिक जेब-खर्च के रूप में प्राप्त होगा। इनकी न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता माध्यमिक (आठवीं कक्षा) उत्तीर्ण रहेगी। हमारा उद्देश्य यह है कि प्रशिक्षण के बाद इन युवकों को अबुझमाड़ क्षेत्र के भीतर भेजा जाय, जिससे वे गाँव के लोगों को जीवन-धारण के लिए आवश्यक मोटी-मोटी बातों की शिक्षा दे सकें। ये प्रशिक्षित युवक हमारी 'भूमि-सेना' का निर्माण करेंगे, जो आर्थिक आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य-संरक्षण तथा शिक्षा का सन्देश लेकर गाँवों में जाकर बैठ जाएँगे तथा उनकी सर्वांगीण उन्नति के लिए कृतसंकल्प होंगे। हमारे प्रथम दल के प्रशिक्षार्थियों से मिलकर, उनसे बातचीत करके अतिथिद्वय ने प्रसन्नता व्यक्त की। फिर विद्यापीठ के छात्रों ने सामूहिक कवायत, बैंड वादन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम का प्रदर्शन किया। पन्द्रह दिनों की अल्प अवधि के प्रशिक्षण का ऐसा सुन्दर फल देख अतिथिगण आनन्द और विस्मय से भर गये।

१२ सितम्बर को रामकृष्ण मठ के वरिष्ठ न्यासी तथा रामकृष्ण मिशन की कार्यकारिणी के सदस्य, सुप्रसिद्ध वाग्मी, रामकृष्ण मठ हैदराबाद के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्दजी ने नारायणपुर को भेंट दी। वे भी वहाँ की गति-विधियों को देख अत्यन्त प्रभावित हुए तथा बाद में उन्हें राष्ट्रीय एकता के लिए जो एक लाख रुपये के इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया, वह राशि उन्होंने तत्काल नारायणपुर के इस आश्रम को दे दी।

१० नवम्बर १९८६ को रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी हिरण्मयानन्दजी का नारायणपुर आगमन हुआ। उन्होंने उसी दिन 'साधु निवास' का उद्घाटन किया तथा १४ नवम्बर के प्रातः विद्यापीठ के नवनिर्मित प्रार्थना-भवन में श्री रामकृष्ण देव, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द के चित्रपटों को स्थापित कर उसका भी विधिवत् उद्घाटन सम्पन्न कर दिया।

२३ दिसम्बर १९८६ को श्री माँ सारदा देवी का जन्म दिवस नारायणपुर केन्द्र में उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस पुनीत पर्व पर आश्रम परिसर में उस क्षेत्र के लिए केन्द्रीय उचित मूल्य दूकान का भी शुभारम्भ कर दिया गया।

यह १६ महीने के हमारे काम का लेखा-जोखा है। 'इनडोर' अस्पताल के निर्माण का कार्य तीव्र गति से चल रहा है। प्रशिक्षण केन्द्र के लिए अलग भवन की व्यवस्था की जा रही है, जिससे प्रशिक्षण-कार्य का समुचित विस्तार किया जा सके। गाँवों में प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा के प्रसार की योजना भी हाथ में ली जा रही है, जिससे अशिक्षा के कारण होनेवाले शोषण से ग्रामवासी मुक्ति पा सकें तथा अपना भला-बुरा समझने में समर्थ हो सकें।

हम उस अंचल के वनवासियों को राष्ट्र की मुख्य-धारा से जोड़ना चाहते हैं। इसके लिए सबसे पहले हमारी चेष्टा रहेगी कि उन्हें पेटभर भोजन मिले और पीने का स्वच्छ पानी। वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनें। उनके लड़के-लड़कियाँ सही शिक्षा पाएँ ,जिससे अपने गाँवों का विकास कर सकें। अभी जिस प्रकार हमने वनवासी लड़कों के लिए आवासीय विद्यालय खोला है, उसी प्रकार दो-तीन वर्ष बाद, अपने कार्य के दूसरे चरण में, हम नारायणपुर में वनवासी लड़कों के लिए भी ऐसा ही आवासीय विद्यालय प्रारम्भ करेंगे। (अबुझमाड़ के भीतर के केन्द्रों में लड़के और लड़कियाँ दोनों एक साथ हमारे विद्यालयों में

शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।) जैसा कि हम कह चुके हैं, हम विद्यापीठ के बालकों को हिन्दी, संस्कृत एवं अंगरेजी इन तीनों भाषाओं में दक्ष बनाना चाहते हैं और उन्हें इस प्रकार शिक्षित करना चाहते हैं कि वे आगे चलकर अपने बलबूते पर प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय दोनों स्तर की विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करें, जिससे उन्हें आदिवासी आरक्षित कोटे की आवश्यकता न पड़े। इससे उनका आत्मविश्वास जागेगा, स्वाभिमान पैदा होगा और उनकी खोयी अस्मिता उन्हें प्राप्त होगी।

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनने के लिए उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण भी साथ-ही-साथ दिया जा रहा है।

संक्षेप में, हम स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्देशित 'मनुष्य' बनानेवाली शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं, जिसका अर्थ है शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक चारों प्रकार से उन्नति।

काम कठिन है और लक्ष्य दूर, पर करना और चलना अपना कर्त्तव्य मानकर हम क्रियाशील हैं। लक्ष्य प्राप्त होगा ही।

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुमादक—डा० आशीष बनर्जी

त्रिगुणात्मिका प्रकृति से कारण शरीर का उत्पन्न होना :—

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं
तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था
प्रलीन सर्वेन्द्रिय बुद्धिवृत्तिः ॥१२०

सत्व, रज और तमोगुण के द्वारा वर्णित इस अव्यक्त आत्मा को कारण शरीर कहा जाता है। जिस सुषुप्ति में सभी इन्द्रियों तथा बुद्धि की सम्पूर्ण वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं, वही सुषुप्ति कारण शरीराभिमानी जीव की जाग्रत एवं स्वप्न से पृथक एक अवस्था है।१२०

स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का कारण होने के कारण यह कारण शरीर के नाम से जाना जाता है। नाश शील होने के कारण इन सबको शरीर कहा जाता है;

कारण शरीर एक मात्र ब्रह्मज्ञान के द्वारा नाश को प्राप्त होता है।

सुषुप्ति में वृत्ति समूह का लय होता है; समाधि में भी वृति समूह निरुद्ध होता है। परन्तु सुषुप्ति अज्ञानाच्छन्न अवस्था है; और समाधि विषय रहित ज्ञान एवं आनन्द-अनुभव की अवस्था है।

अब सुषुप्ति के स्वरूप का वर्णन किया जायेगा

सर्व प्रकार प्रमिति प्रशान्ति –
बीजात्मनावस्थितिरेव बुद्धेः।
सुषुप्तिरेतस्य किल प्रतीतिः
किंचिन्न वेद्मीति जगत्प्रसिद्धेः ॥१२१

सुषुप्ति काल में सर्व प्रकार के विषयज्ञान (एवं स्मृति, भ्रान्ति आदि) का लय हो जाता है; बुद्धि उस समय अविद्या रूप में स्थिर रहती है। सभी मनुष्यों की सुषुप्ति काल में ऐसी प्रतीति कि 'मैं कुछ नहीं जानता' कारण शरीर रूप अज्ञान के अस्तित्व का प्रमाण है।१२१

शुद्ध चिदात्मा निर्विकार है; उसमें किसी प्रकार की अवस्था सम्भव नहीं। बुद्धि आत्मा की उपाधि है। बुद्धि के विकारशील होने के कारण इसमें विविध अवस्थाएं होती हैं। बुद्धि रूप उपाधि में अभिमान के फलस्वरूप जीव विविध अवस्थाओं से गुजरता है। परन्तु सुषुप्ति काल में जीव में स्थित बुद्धि का लय हो जाता है। परन्तु आत्मा सर्वदा वर्तमान रहती हैं। अतः बुद्धिकृत अवस्थाओं का अभिमान आत्मा में कदाचित नहीं रहता।

परन्तु मन अति सूक्ष्म आकार में सुषुप्ति काल में वर्तमान रहता है, अज्ञानावस्था की स्मृति ही उसका प्रमाण है।

देह इन्द्रिय आदि आत्मा नहीं हैं :—

देहेन्द्रिय प्राणमनोऽहमादयः
सर्वे विकारा विषयाः सुखादयः।
व्योमादिभूतान्यखिलं च विश्व-
मव्यक्त पर्यन्तमिदं ह्यनात्मा ॥१२२

देह इन्द्रिय प्राण मन अहंकार आदि, सभी प्रकार की देह चेष्टा, शब्द स्पर्शादि सभी विषय, सुख दुखादि मन के विकार, आकाश आदि पंच महाभूत, समस्त विश्व ब्रह्मांड, अव्यक्तनाम्नी माया पर्यन्त से सब कुछ अनात्मा हैं। (आत्मा इन सबसे पृथक सत् वस्तु है)।

आत्मा से भिन्न सब कुछ मिथ्या है :—

माया माया कार्यं सर्वं
महदादि देहपर्यन्तम।
असदिदमनात्मकं त्वं विद्धि
मरुमरीचिकाकल्पम् ॥ १२३

माया एवं महत् से स्थूलदेह तक मायिक सृष्टि सब कुछ मिथ्या है। इन सब अनात्म वस्तु को रेगिस्तान में जल भ्रम की भांति मिथ्या जानना चाहिए।१२३

जगत को मरीचिका की भांति मिथ्या कहा गया है। जगत की पारमार्थिक सत्ता नहीं; परन्तु व्यावहारिक सत्ता है। जब तक भ्रान्ति ज्ञान है, तब तक जगत का अस्तित्व है। मरीचिका पूर्ण रूप से मिथ्या वस्तु नहीं है; मरुभूमि रूप अधिष्ठान यदि न होता, तो जलभ्रम भी न होता। अज्ञान वश ब्रह्मरूप अधिष्ठान में जगत का भ्रम होता है। जगत आकाश कुसुम अथवा खरगोश के सींग की भांति मिथ्या वस्तु नहीं है। जगत आकाश कुसुम की भांति निराधार कल्पना मात्र नहीं है।

महत् तत्व से ही विश्वमन होता है। माया अथवा प्रकृति से यह प्रकट होता है। महत् से क्रमशः बुद्धि, मन, विषय, इन्द्रिय आदि उत्पन्न होते हैं।

'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धे रात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥

"इन्द्रिय समूह से रूपरसादि विषयादि अवश्य ही श्रेष्ठ हैं (क्योंकि विषयादि सूक्ष्मतर एवं व्यापक हैं); विषय समूह से मन (मन के आरम्भक भूत सूक्ष्म) श्रेष्ठ है; परन्तु मन से भी बुद्धि श्रेष्ठ है; बुद्धि से महान् आत्मा प्राणिगण में स्थित अन्तर्निहित व्यापक हिरण्यगर्भ तत्व) श्रेष्ठ हैं; हिरण्य गर्भ से अव्यक्त (माया तत्व) श्रेष्ठ हैं; (सभी कार्य एवं कारण की शक्ति समष्टि रूप) माया तत्व से पुरुष (परमात्मा) श्रेष्ठ हैं। पुरुष से श्रेष्ठ और कुछ नहीं। पुरुष ही सबकी पराकाष्ठा हैं। वे ही परम गति हैं।"

□

स्वामी अद्‌भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक– स्वामी विदेहात्मानन्द

"सुना कि बलराम बाबू माताजी और लक्ष्मी दीदी को तीर्थयात्रा के लिए भेज रहे हैं। साथ में योगीन भाई और काली भाई जाएँगे। माँ तीर्थ करने जा रही हैं, यह सुनकर मुझे भी उनके साथ जाने की इच्छा हुई। माताजी यह बात समझ गयीं। उन्होंने मुझे भी अपने साथ कर लिया। मास्टर महाशय ने अपनी पत्नी को भी माँ के साथ भेज दिया और गोलाप माँ ने भी उनका संग नहीं छोड़ा। देखो तो, माताजी की कृपा से हम लोगों का तीर्थगमन हो गया। ऐसे स्नेह के के द्वारा ही माँ ने हम सबको बाँध रखा है।"

१४. वृन्दावन में

श्री ठाकुर की महासमाधि के एक माह के भीतर ही माताजी तीर्थयात्रा के लिए निकलीं। उस समय लक्ष्मी दीदी, निकुंज देवी (मास्टर महाशय की पत्नी), गोलाप माँ, योगीन महाराज और काली महाराज उनके संगी हुए। हमारे लाटू महाराज भी उनके साथ वृन्दावन गये। मार्ग में वे लोग देवघर उतरे। वहाँ वैद्यनाथजी का दर्शन और पूजन करके सुबह उन लोगों ने काशीधाम की यात्रा की। काशी में वे लोग मात्र तीन दिन ठहरे। वहाँ उन लोगों ने विश्वनाथजी की पूजा की, काशीक्षेत्र का दर्शन और वहाँ के साधु-संन्यासियों का संग किया। वहाँ सभी मिलकर एक दिन स्वामी भास्करानन्द के आश्रम पर गये। उस दिन भास्करानन्दजी के साथ लाटू महाराज की काफी बातें हुई थीं। उसे जैसा हमने सुना है, वैसा ही लिखते हैं—

"भास्करानन्द स्वामी ने कहा, 'कहीं घूमो मत, घूमने से कुछ नहीं पाओगे। एक जगह बैठकर उन्हें पुकारो, भगवान अवश्य ही तुम पर दया करेंगे। जानते हो, बचपन में मैं बहुत जगह घूमा हूँ, अनेकों का संग किया है। पैदल चलकर केदार-बद्री, जगन्नाथ, द्वारका, रामेश्वर— चारों धाम गया हूँ। उन दिनों रेल नहीं था, अतः कितना कष्ट हुआ होगा यह तुम समझ ही सकते हो! इतना घूमकर भी मुझे कुछ मिला नहीं, जो दुःख था, वह वैसे ही रह गया। तब यहीं इसी उद्यान में बैठकर मैंने प्रतिज्ञा की कि या तो भगवान की प्राप्ति होगी नहीं तो यह शरीर ही चला जाय। खैर, अब मुझे थोड़ा आनन्दलाभ हुआ है।' वे हाथ में छड़ी लिए टहलते हुए ये बातें कह रहे थे; उस समय मन्दिर में उनकी मूर्ति की पूजा हो रही थी। इसी लिए बड़े प्रसन्न मन से उन्होंने हम लोगों से पूछा, 'वहाँ क्या हो रहा है, बताओ?' मैंने (लाटू महाराज) कहा, 'आप नारायण हैं, आपकी पूजा हो रही है।' तब वे हंसकर बोले, 'क्या बात है!' मानो बालक का सा भाव था।

"एक दिन रात को विश्वनाथ की आरती देखने के बाद माताजी बड़े जोर जोर से चलने लगीं, हम लोगों से भी अधिक तेजी से। निवास स्थान पर आकर वे तुरन्त सो गयीं, किसी के साथ बात-चीत नहीं की। सुना है कि उस दिन वे बड़ी रात गये उठकर फिर ध्यान में बैठी थीं। गोलाप-माँ

ने उन्हें कितना ही पुकारा, तो भी उस दिन उनका ध्यान नहीं टूटा।"

काशी में तीन दिन रहने के बाद सभी अयोध्या दर्शन को गये। वहाँ पर केवल एक दिन बिता-कर उन लोगों ने वृन्दावन-यात्रा की। वृन्दावन में कालाबाबू के कुंज में निवास करने की बात हुई थी। ट्रेन से उतरते समय लाटू महाराज अपनी कोई चीज गाड़ी में भूलकर उतर पड़े। माता ने उसे देख लिया और एक व्यक्ति को उसे उतार लेने को कहा। निवास स्थान पर आकर माताजी योगीन-माँ को देखकर रो उठीं और उन्हें हृदय से लगा लिया।

वहाँ की कुछ घटनाएँ बाद में हमें लाटू महाराज से सुनने को मिलीं, जो निम्नलिखित हैं—"माताजी एक दिन मुझे, लक्ष्मी दीदी को और गोलाप-माँ को साथ लेकर राधारमणजी का मन्दिर देखने गयीं। वहाँ पर भाव में उन्होंने नवगोपाल बाबू की पत्नी को राधारमणजी के पास खड़ी चँवर डुलाते देखा। यह देखकर वे अत्यन्त आनन्दित हुई और बोलीं, 'उसका ठीक ठीक सेविका का भाव है न, इसीलिए।'

"एक दिन गोलाप-माँ हम लोगों के साथ माधवजी के मन्दिर को गयीं। वहाँ मन्दिर के चबूतरे पर गंदा पड़ा देखकर गोलाप-माँ ने अपना कपड़ा फाड़कर उसे साफ कर दिया। देखो तो, उसका कैसा भाव है? मन्दिर को शुद्ध-पवित्र रखने के लिए उसमें कितना आग्रह है! माँ का मन्दिर भी वह इसी प्रकार प्रतिदिन स्वच्छ कर रखती थीं। जानते हो, पहले उसमें कितना शुचि-अशुचि का भाव था! परन्तु उन्हें देखने के बाद से वह और कुछ नहीं मानती थी।

"वृन्दावन में माताजी और लक्ष्मी दीदी किसी किसी दिन योगीन भाई को और किसी किसी दिन मुझे साथ लेकर यमुना तट पर टहलने जाया करती थीं। तब कालीभाई वन वन घूमने (वृन्दावन-परिक्रमा) को निकला था। वहाँ से लौटकर कालीभाई मास्टर महाशय की पत्नी को साथ लेकर कलकत्ता चला आया।...

"योगीन भाई को दीक्षा देने के लिए ठाकुर ने माताजी को स्वप्न में आदेश दिया। माँ किसी को मन्त्र नहीं देना चाहती थीं। उनके बार बार आदेश करने पर माँ ने योगीन भाई को दीक्षा दी। वृन्दावन में माँ प्रतिदिन फूल देकर ठाकुर के चित्र की पूजा किया करती थीं और एक (अस्थि का) डिब्बा अपने मस्तक से छुलाकर रख देती थीं। एक दिन वह डिब्बा उन्होंने हमारे सिर से भी स्पर्श कराया।.. कीर्तन सुनना उन्हें बड़ा पसन्द था। बीच बीच में वे मुझे और लक्ष्मी दीदी को साथ लेकर भगवान जी के आश्रम में नाम सुनने को जाया करती थीं। (इन भगवानजी ने कुछ काल तक गंगामाई के आश्रम में निवास किया था। ठाकुर जब मथुरबाबू के साथ वृन्दावन आये थे, उस समय गंगामाई ने ठाकुर को अपने आश्रम में रहने का अनुरोध किया था। ठाकुर ने वहाँ कुछ दिन निवास किया। बाद में जब उन्हें अपनी माँ की याद आयी तो वे गंगामाई का आश्रम छोड़-कर कलकत्ता लौट आये।) · बलराम बोस के चाचा वृन्दावन में निवास करते हुए वैष्णव सेवा किया करते थे। वे हम लोगों का बड़ा यत्न करते थे और एक एक दिन एक एक मन्दिर का प्रसाद मँगवा कर हमें खिलाते थे।"

साधु सिद्धानन्द द्वारा लिपिबद्ध एक घटना हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—"वृन्दावन निवास काल में भी श्रीयुत लाटू का पहले के समान ही आहार आदि का कोई ठिकाना नहीं रहता था। इसके अतिरिक्त वे प्रायः ही अपने हिस्से की रोटियाँ बन्दर आदि को खिलाकर किसी भी समय माताजी या उनकी संगिनियों से खाने को माँगते थे। इस पर कोई कोई उन पर नाराजगी प्रकट करती थीं। परन्तु माताजी उनके इस बालवत् आचरण पर नाराज न होकर सबको उन्हें कठोर बातें सुनाने से

मना करती थीं और स्नेह पूर्ण चित्त से उन्हें अपने पास बैठाकर परितोषपूर्वक भोजन कराया करती थीं। माँ जानती थीं कि उनका दुलारा लड़का लाटू बड़ा ही अभिमानी है। उसे चाहे कोई कुछ भी क्यों न कहे, पर उसका सारा अभिमान एक सरल बालक के समान मेरे ही ऊपर है। इसीलिए वे अपनी संगिनियों को श्रीयुत लाटू का खाना अलग से ढँककर रख देने को कहती थीं, ताकि उनका सेवक लाटू अपनी इच्छा के अनुसार भोजनादि कर सके और उसके बालसुलभ व्यवहार आदि में विघ्न न पड़े।''

योगीन महाराज के मुख से मैंने लाटू महाराज के बारे में एक प्रसंग सुना है। वह कहाँ की घटना है यह हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते, तथापि हमारा अनुमान है कि यह वृन्दावन में ही घटित हुई होगी। ''एक बार लाटू महाराज बिना किसी को कुछ कहे न जाने कहाँ गायब हो गये कि हममें से कोई उसका पता नहीं लगा सके। माताजी उसके लिए बड़ी चिन्तित हुईं। तीन दिन बाद वह स्वयं ही आकर हाजिर हुआ। उस समय उसके केश बिखरे हुए थे, आँखें और मुख लाल हो रहे थे – मानो विकार का रोगी हो। हम सबने मिलकर पूछा—'कहाँ थे ?' उसने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल हँसने लगा ! आखिर कार जब माताजी ने पूछा तब वह बोला, 'नदी के किनारे था।' उसके बाद ठीक एक बच्चे की भाँति कहने लगा, 'बड़ी भूख लगी है माँ, कुछ खाने को दीजिए। माताजी जल्दी से खाना ले आयीं। खा पीकर वह बिना किसी को कुछ कहे फिर चला गया। यह सब देखकर माताजी कहतीं, 'लाटू का सबकुछ अद्भुत है।'

१८८७ ई० के जनवरी या फरवरी के अन्त में श्रीयुत् रामचन्द्र दत्त की एक पुत्री का आग में जलकर देहान्त हो गया। यह समाचार क्रमशः माताजी तक पहुँचा। भक्तपालक के घर का ऐसा दुखद संवाद सुनकर उन्होंने सेवक लाटू को (वहाँ) कलकत्ता भेज दिया।

□

जन्म, बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु इनसे चारों ओर हम घिरे हैं। इस पर विचार करते हुए और सद्धर्म की साधना करने से हम दुःख के पहाड़ के बोझ से बच सकते हैं। दुराचार के पालन से लाभ क्या ?

जितने विवेकी हैं, वे शरीर-सुख का परित्याग करते हैं, वासना से घृणा करते हैं और आध्यात्मिक जीवन को बढ़ावा देते हैं।

पेड़ आग की लपटों में हो, तो वहाँ पक्षी कैसे आएंगे भला ? जहाँ उद्वेग है वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जो यह नहीं जानता, वह भले ही पंडित हो और दूसरे उसे ऋषितुल्य मानकर सराहें, पर वह अज्ञान से घिरा हुआ माना जायगा।

यह ज्ञान जिसमें है, उसमें सच्चा विवेक उदित होता है और वह सुखोपभोग के फेर में पड़ने में सजग रहेगा। ऐसी मनोदशा प्राप्त करने के लिए विवेक परम आवश्यक है। विवेक की उपेक्षा करने से जीवन विफल होगा।

समस्त धर्मों का यही उपदेश है। विवेक बिना तर्क का कोई महत्व नहीं।

—भगवान बुद्ध

वह धन्य हो जायेगा

—श्री जगमोहन सिंह मनराल

अल्मोड़ा

"श्री श्री रामकृष्ण देव (ठकुर) को जो एक बार प्रणाम करेगा वह सोना हो जायेगा।" वन के बेदान्त को झोपड़ियों में लाने वाले श्रीमत्‌स्वामी विवेकानन्द के इस एक वाक्य से श्री ठाकुर की परम विशिष्ठता सिद्ध होती है। श्री ठाकुर ने इसी बात को स्वयं अपने श्रीमुख से कुछ इस तरह कहा था कि जो एक बार ठीक-ठीक भगवान् को पुकारेगा उसे यहाँ (स्वयं शरीर को दिखाकर) आना पड़ेगा। आज श्री रामकृष्ण देव सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म शरीर में परिव्याप्त हैं जिनकी इति नहीं की जा सकती। उन अनन्त भावमय श्री श्री रामकृष्ण देव के भाव में प्रत्येक को आना होगा—जो ठीक ठीक एक बार भी भगवान् के आगे समर्पण करे, उन्हें मन और मुख को एक करके पुकारे।

मगर आज की भागदौड़ भरी मशीनी जिन्दगी में इस तरह का समर्पण एक अत्यन्त दुष्कर बात है, परन्तु असंभव नहीं। सत्य तो सत्य है, उसे नकारने से चल ही नहीं सकता। हममें से प्रत्येक को इस भाव में आना ही होगा, अपनी हर प्रकार की समस्या के समाधान के लिए, चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक, राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय।

हमारी समस्या और उसका समाधान :

श्री ठाकुर की पतितपावन नाम पर विश्वास का नहीं होना ही आज मानव के लिए प्रमुख संकट है। यह संकट ही भक्ति का शत्रु है। बिना भक्ति के ज्ञान शुष्क ग्रेनाइर की चट्टान है। भक्ति को यदि एक गड्ढा मान लिया जाय तो श्री भगवान् की कृपा का जल उसमें इकट्ठा होकर सिंचाई आदि के कार्यों में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। श्री ठाकुर एक समन्वयमय अवतार के रूप में आये जिन्हें समझना किसी के लिये संभव नहीं, मगर उनका इशारा ही हमारी सभ्यता व स्वयं हमारे अस्तित्व की रक्षा के लिए पर्याप्त हैं। वे आज के मानव की समस्त समस्याओं के समाधान हैं। उसे उनकी ओर निहारना ही होगा। वह भला दिशाहीन, मूल्य व शील विहीन, नंगी भौतिकता की विषैली मृग तृष्णाओं को लेकर जायेगा कहाँ ? उसका मोह भंग अवश्य एक पड़ाव पर होगा। जहाँ वह मोह भंग होगा, वहीं उसे गहन अन्धकार और दिशाहीनता के बीच एक आशा का प्रकाश पुन्ज, एक समाधान का स्रोत, श्री रामकृष्ण देव का संदेश मिलेगा, उनका निर्मल प्रेरणाप्रद पवित्र जीवन दिखेगा और मिलेगी उनकी कृपा का आश्वासन। श्री माँ की अभय वाणी उसके कानों में गूँजेगी "बेटा भय क्या, मैं हूँ, ठाकुर हैं। ठाकुर को पकड़ो, उनकी शरण में जाओ। जो उनकी शरण में जायेगा वे अवश्य उसे मृत्यु के उस पार ले जायेंगे।"

जो भी श्रीरामकृष्ण के नाम पर ठीक ठीक समर्पण करेगा वे उसे अवश्य अपने भाव में ले लेंगे। चाहे वह किसी जाति, धर्म, भाषा, व राष्ट्रीयता से सबंधित हो। उनके भाव में आते ही उसका सबकुछ बदल जायेगा। मानो वह नया हो गया है। उसे अपने अर्थहीन जीवन में नये अर्थ मिलने लगेंगे और वह धन्य हो जायेगा।

□

समाचार एवं सूचनाएँ

श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव

जमशेदपुर : स्थानीय रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी में ३ मार्च १९९० को भगवान श्रीरामकृष्ण देव का १५४ वाँ जन्मोत्सव समारोह एक सप्ताह तक सोल्लास मनाया गया। इस अवसर पर ३ मार्च को एक जन सभा आयोजित की गयी। सारदा पीठ, बेलुड़ मठ के अध्यक्ष एवं रामकृष्ण मठ एवं मिशन के न्यासी श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज ने अध्यक्षता की। रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलियाके सचिव स्वामी उमानन्दजी महाराज ने बंगला में 'अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण' विषय पर सारगर्भित भाषण देते हुए बताया कि सभी अवतार अपने युग की विसंगतियाँ दूर करने आते हैं। श्रीरामकृष्ण के जीवन और आदर्शों का यदि निष्कपट भाव से अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट दीखेगा कि वे तो सभी अवतारों में वरिष्ठ थे।

विवेक शिखा के सम्पादक एवं राजेन्द्र कालेज, छपरा के हिन्दी विभाग के आचार्य डा० केदार नाथ लाभ ने वर्त्तमान युग में श्रीरामकृष्ण की उपादेयता पर हिन्दी में व्याख्यान देते हुए उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला।

स्वामी स्मरणानन्दजी महाराजने अंग्रेजी में अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए बताया कि श्रीरामकृष्ण ने धर्म को उसके सही रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसे वैज्ञानिकों की भाँति प्रयोगों से भी सिद्धकर दिखाया।

श्रीरामकृष्ण मन्दिर का उद्घाटन

मुजफ्फरपुर : श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर में ३ से ५ अप्रैल ९० तक १२ लाख रुपये से निर्मित श्रीरामकृष्ण देव के विशाल नये मन्दिर का उद्घाटन समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। नगर की प्रमुख सड़कों पर तोरण द्वार लगाये गये थे। ३ अप्रैल को भगवान् श्रीरामकृष्ण देव की विधिवत पूजा होमादि के साथ हुई। ४ अप्रैल को श्रीरामकृष्ण की भव्य प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने की। उसी दिन संध्या को स्वामी लोकेश्वरानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में एक जन सभा हुई जिसमें इलाहाबाद रामकृष्ण मिशन के सचिव स्वामी निखिलात्मानन्दजी महाराज, स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन रायपुर तथा रामकृष्ण मिशन, कटिहार के सचिव स्वामी भागवतानन्दजी महाराज ने प्रेरक व्याख्यान दिये। ५ अप्रैल को आयोजित जन सभा की अध्यक्षता की स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने। वक्ता थे रामकृष्ण मिशन समाज सेवा शिक्षण केन्द्र के प्राचार्य स्वामी शंशाकानन्दजी महाराज तथा विवेक शिखा के सम्पादक डॉ० केदार नाथ लाभ। इन जन सभाओं के अतिरिक्त नित्य शहनाई वादन, अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि भी प्रस्तुत किये गये।

रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा

छपरा : श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में २४ मई ९० को बेलुड़ मठ के प्रसिद्ध एवं वरिष्ठ साधु श्रीमत् स्वामी मुख्यानन्दजी महाराज ने आश्रम के खुले प्रार्थना भवन में युगावतार श्रीरामकृष्ण एवं युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द के सन्देश पर प्रायः डेढ़ घण्टे तक अत्यन्त ही विद्वत्तापूर्ण हृदयग्राही प्रवचन दिया। उन्होंने धर्म के वास्तविक स्वरूप का विश्लेपण करते हुए कहा कि आधुनिक विज्ञान हमें शक्ति तो दे सकता है पर भक्ति या मुक्ति नहीं दे सकता। श्रीरामकृष्ण ने धर्म को उसका वास्तविक रूप प्रदान किया, स्वामी विवेकानन्दजी ने उसे देश-विदेश में प्रचारित किया और श्री माँ सारदा ने उनके आदर्शों को अपने जीवन में ढालकर प्रदर्शित किया और बताया कि धर्म शास्त्र का विषय नहीं जीवन जीने का एक शिल्प है, एक पद्धति है।

आश्रम के सचिव डॉ० केदार नाथ लाभ ने आरंभ में स्वामी मुख्यानन्दजी का परिचय देते हुए आगत सज्जनों का स्वागत किया।